॥ श्री चन्द्रप्रभ स्वामिने नमः ॥

Estd.:1991

श्री वर्धमान जैन मंडल, चेन्नई द्वारा संचालित

(संस्थापक सदस्य : श्री तमिलनाड जैन महामंडल)

Estd.:2006

श्री वर्धमान कुंवर जैन संस्कार वाटिका

... Ek Summer & Holiday Camp

जैन तत्व दर्शन

(JAIN TATVA DARSHAN)

संकलन व प्रकाशक

श्री वर्धमान जैन मंडल, चेन्नई

पाठ्यक्रम - 6

एक ज्ञान ज्योत जो बनी अमर ज्योत

जन्म दिवस
14-2-1913

स्वर्गवास
27-11-2005

पंडित भूषण पंडितवर्य श्री कुंवरजीभाई दोसी

विशेष परिचय

- जन्म : गुजरात के भावनगर जिले के जैसर गाँव में हुआ था।
- सम्यग्ज्ञान प्रदान : भावनगर, महेसाणा, पालिताणा, बैंगलोर, मद्रास।
- प.पू. पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. का आपश्री पर विशेष उपकार।
- श्री संघ द्वारा पंडित भूषण की पदवी से सुशोभित।
- अहमदाबाद में वर्ष 2003 के सर्वश्रेष्ठ पंडितवर्य की पदवी से सम्मानित।
- प्रायः सभी आचार्य भगवंतों, साधु -साध्वीयों से विशेष अनुमोदनीय।
- धर्मनगरी चेन्नई पर सतत् 45 वर्ष तक सम्यग् ज्ञान का फैलाव।
- तत्त्वज्ञान, ज्योतिष, संस्कृत, व्याकरण के विशिष्ट ज्ञाता।
- पूरे भारत भर में बड़ी संख्या में अंजनशलाकाएँ एवं प्रतिष्ठाओं के महान् विधिकारक।
- अनुष्ठान एवं महापूजन को पूरी तन्मयता से करने वाले ऐसे अद्‌भुत श्रद्धावान्।
- स्मरण शक्ति के अनमोल धारक।
- तकरीबन 100 छात्र-छात्राओं को संयम मार्ग की ओर अग्रसर कराने वाले।
- कई साधु-साध्वीयों को धार्मिक अभ्यास कराने वाले।
- आपश्री द्वारा मंत्रों का स्पष्ट उच्चारण एवं विधि में शुद्धता को विशेष प्रधानता।
- तीर्थ यात्रा के प्रेरणा स्त्रोत।

दुनिया से भले गये पंडितजी आप, हमारे दिल से न जा पायेंगे।
आप की लगाई इन ज्ञान परब पर, जब-जब ज्ञान जल पीने जायेगें
तब बेशक गुरुवर आप हमें बहुत याद आयेंगे.....

वि.सं. २०७१ ई.स. 2015 चतुर्थ आवृत्ति - 1000 प्रतिया (कुल 6000 प्रतिया) मूल्य : ₹70/-
सर्वहक : श्रमण प्रधान श्री संघ के आधीन साधु-साध्वीजी भगवंतो को और ज्ञानभंडारो को भेंट स्वरूप मिलेगी

।। श्री चन्द्रप्रभस्वामिने नमः ।।

श्री वर्धमान कुंवर जैन संस्कार वाटिका

..... *Ek Summer & Holiday Camp*

जैन तत्त्व दर्शन

पाठ्यक्रम 6

* दिव्याशीष *

"पंडित भूषण" श्री कुंवरजीभाई दोशी

* संकलन व प्रकाशक *

श्री वर्धमान जैन मंडल

33, रेड्डी रामन स्ट्रीट, चेन्नई - 600 079. फोन : 044 - 2529 0018 / 2536 6201 / 2539 6070 / 2346 5721

E-mail : svjm1991@gmail.com Website : www.jainsanskarvatika.com

यह पुस्तक बच्चों को ज्यादा उपयोगी बने, इस हेतु आपके सुधार एवं सुझाव प्रकाशक के पते पर अवश्य भेंजे।

संस्कार वाटिका
अंधकार से प्रकाश की ओर

.... एक कदम

अज्ञान अंधकार है, ज्ञान प्रकाश है, अज्ञान रूपी अंधकार हमें वस्तु की सच्ची पहचान नहीं होने देता। अंधकार में हाथ में आये हुए हीरे को कोई कांच का टुकडा मानकर फेंक दे तो भी नुकसान है और अंधकार में हाथ में आये चमकते कांच के टुकडे को कोई हीरा मानकर तिजोरी में सुरक्षित रखे तो भी नुकसान हैं।

ज्ञान सच्चा वह है जो आत्मा में विवेक को जन्म देता है। क्या करना, क्या नहीं करना, क्या बोलना, क्या नहीं बोलना, क्या विचार करना, क्या विचार नहीं करना, क्या छोडना, क्या नहीं छोडना, यह विवेक को पैदा करने वाला सम्यग ज्ञान है। संक्षिप्त में कहें तो हेय, ज्ञेय, उपादेय का बोध कराने वाला ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। वही सम्यग ज्ञान है।

संसार के कई जीव बालक की तरह अज्ञानी है, जिनके पास भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय, श्राव्य-अश्राव्य और करणीय-अकरणीय का विवेक नहीं होने के कारण वे जीव करने योग्य कई कार्य नहीं करते और नहीं करने योग्य कई कार्य वे हंसते-हंसते करके पाप कर्म बांधते हैं।

बालकों का जीवन ब्लोटिंग पेपर की तरह होता है। मां-बाप या शिक्षक जो संस्कार उसमें डालने के लिए मेहनत करते हैं वे ही संस्कार उसमें विकसित होते हैं।

बालकों को उनकी ग्रहण शक्ति के अनुसार आज जो जैन दर्शन के सूत्रज्ञान-अर्थज्ञान और तत्त्वज्ञान की जानकारी दी जाय, तो आज का बालक भविष्य में हजारों के लिए सफल मार्गदर्शक बन सकता है।

बालकों को मात्र सूत्र कंठस्थ कराने से उनका विकास नहीं होगा, उसके साथ सूत्रों के अर्थ, सूत्रों के रहस्य, सूत्र के भावार्थ, सूत्रों का प्रेक्टिकल उपयोग, आदि बातें उन्हें सिखाने पर ही बच्चों में धर्मक्रिया के प्रति रूचि पैदा हो सकती है।

धर्मस्थान और धर्म क्रिया के प्रति बच्चों का आकर्षण उसी ज्ञान दान से संभव होगा। इसी उद्देश्य के साथ वि.सं. २०६२ (14 अप्रेल 2006) में 375 बच्चों के साथ चेन्नई महानगर के

साहुकारपेट में **"श्री वर्धमान जैन मंडल"** ने संस्कार वाटिका के रूप में जिस बीज को बोया था, वह बीज आज वटवृक्ष के सदृश्य लहरा रहा है। आज हर बच्चा यहां आकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता है।

पंडित भूषण पंडितवर्य श्री कुंवरजीभाई दोसी, जिनका हमारे मंडल पर असीम उपकार है उनके स्वर्गवास के पश्चात मंडल के अग्रगण्य सदस्यों की एक तमन्ना थी कि जिस सद्ज्ञान की ज्योत को पंडितजी ने जगाई है, वह निरंतर जलती रहे, उसके प्रकाश में आने वाला हर मानव स्व व पर का कल्याण कर सके।

इसी उद्देश्य के साथ आजकल की बाल पीढी को जैन धर्म की प्राथमिकी से वासित करने के लिए सर्वप्रथम श्री वर्धमान कुंवर जैन संस्कार वाटिका की नींव डाली गयी। वाटिका बचों को आज सम्यग्ज्ञान दान कर उनमें श्रद्धा उत्पन्न करने की उपकारी भूमिका निभा रही हैं। आज यह संस्कार वाटिका चेन्नई महानगर से प्रारंभ होकर भारत में ही नहीं अपितु विश्व के कोने-कोने में अपने पांव पसार कर सम्यग् ज्ञान दान का उत्तम दायित्व निभा रही है।

जैन बचों को जैनाचार संपन्न और जैन तत्त्वज्ञान में पारंगत बनाने के साथ-साथ उनमें सद् श्रद्धा का बीजारोपण करने का आवश्यक प्रयास वाटिका द्वारा नियुक्त श्रद्धा से वासित हृदय वाले अध्यापक व अध्यापिकागणों द्वारा निष्ठापूर्वक इस वाटिका के माध्यम से किया जा रहा है।

संस्कार वाटिका में बाल वर्ग से युवा वर्ग तक के समस्त विद्यार्थियों को स्वयं के कक्षानुसार जिनशासन के तत्त्वों को समझने और समझाने के साथ उनके हृदय में श्रद्धा दृढ हो ऐसे शुद्ध उद्देश्य से **"जैन तत्त्व दर्शन (भाग 1 से 9 तक)"** प्रकाशित करने का इस वाटिका ने पुरूषार्थ किया है। इन अभ्यास पुस्तिकाओं द्वारा "जैन तत्त्व दर्शन (भाग 1 से 9), कलाकृत्ति (भाग 1-3), दो प्रतिक्रमण, पांच प्रतिक्रमण, पर्युषण आराधना" पुस्तक आदि के माध्यम से अभ्यार्थीयों को सहजता अनुभव होगी।

इन पुस्तकों के संकलन एवं प्रकाशन में चेन्नई महानगर में चातुर्मास हेतु पधारे, पूज्य गुरु भगवंतों से समय--समय पर आवश्यक एवं उपयोगी निर्देश निरंतर मिलते रहे हैं। संस्कार वाटिका की प्रगति के लिए अत्यंत लाभकारी निर्देश भी उनसे मिलते रहे हैं। हमारे प्रबल पुण्योदय से इस पाठ्यक्रम के प्रकाशन एवं संकलन में विविध समुदाय के आचार्य भगवंत, मुनि भगवंत, अध्यापक, अध्यापिका, लाभार्थी परिवार, श्रुत ज्ञान पिपासु आदि का पुस्तक मुद्रण में अमूल्य सहयोग मिला, तदर्थ धन्यवाद। आपका सुन्दर सहकार अविस्मरणीय रहेगा।

इस पुस्तक के मुद्रक जगावत प्रिंटर्स धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने समय पर पुस्तकों को प्रकाशित करने में सहयोग दिया।

इन पाठ्यक्रमों के नौ भाग को तैयार करने में विविध पुस्तकों का सहयोग लिया है एवं नामी-अनामी चित्रकारों के चित्र लिये गये हैं। अत: उन पुस्तकों के लेखक, संपादक, प्रकाशकों के हम सदा ऋणी रहेंगे। इस पाठ्यक्रम के प्रकाशन में कोई भूल त्रुटि हो तो सुज्ञ वाचकगण सुधार लेवें।

<u>शुभेच्छा :-</u>

अंत में ''जैन तत्त्व दर्शन'' के विविध पाठ्यक्रमों के माध्यम से सम्यग् ज्ञान प्राप्ति के साथ हर जैन बालक जीवन में आचरणीय सर्वविरती, संयम दीक्षा के परिणाम को प्राप्त करें ऐसी शुभाभिलाषा...

संस्कार वाटिका - जैन संघ के अभ्यूदय के लिए कलयुग में कल्पवृक्ष रूप प्रमाणित हो, यही मंगल मनीषा।

भेजिये आपके लाल को, सच्चे जैन हम बनायेंगे।
दुनिया पूजेगी उनको, इतना महान बनायेंगे।।

जिनशासन सेवानुरागी

श्री वर्धमान जैन मंडल

साहुकारपेट, चेन्नई-79.

<u>मंडल को विविध गुरु भगवंतों का सफल मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद :-</u>

1. प. पू. पंन्यास श्री अजयसागरजी म.सा.
2. प. पू. पंन्यास श्री उदयप्रभविजयजी म.सा.
3. प. पू. मुनिराज श्री युगप्रभविजयजी म.सा.
4. प. पू. मुनिराज श्री अभ्युदयप्रभविजयजी म.सा.
5. प. पू. मुनिराज श्री दयासिंधुविजयजी म.सा.

<u>नम्र विनंती :-</u>

समस्त आचार्य भगवंत, मुनि भगवंतों, पाठशाला के अध्यापक-अध्यापिकाओं एवं श्रुत ज्ञान पिपासुओं से नम्र विनंती है कि इन पाठ्यक्रमों के उत्थान हेतु कोई भी विषय या सुझाव अगर आपके पास हो तो हमें अवश्य लिखकर भेजें ताकि हम इसे और भी सुंदर बना सकें।

पाठ्यक्रम के प्रकाशन में निम्न ग्रंथ एवं पुस्तकों का सहयोग :-

:: उपयुक्त ग्रंथ की सूची ::

1) धर्मबिंदु
2) योगबिंदु
3) जीव विचार
4) नवतत्त्व
5) लघुसंग्रहणी
6) चैत्यवंदन भाष्य
7) गुरुवंदन भाष्य
8) श्राद्धविधि प्रकरण
9) प्रथम कर्मग्रंथ

:: उपयुक्त पुस्तक की सूची ::

1) गृहस्थ धर्म	पू. आचार्य श्रीमद् विजय केसरसूरीश्वरजी म.सा.
2) बाल पोथी	पू. आचार्य श्रीमद् विजय भुवनभानूसूरीश्वरजी म.सा.
3) तत्त्वज्ञान प्रवेशिका	पू. आचार्य श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा.
4) बच्चों की सुवास	पू. आचार्य श्रीमद् विजय भद्रगुप्तसूरीश्वरजी म.सा.
5) कहीं मुरझा न जाए	पू. आचार्य श्रीमद् विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.
6) रात्रि भोजन महापाप	पू. आचार्य श्रीमद् विजय राजयशसूरीश्वरजी म.सा.
7) पाप की मजा-नरक की सजा	पू. आचार्य श्रीमद् विजय रत्नाकरसूरीश्वरजी म.सा.
8) चलो जिनालय चले	पू. आचार्य श्रीमद् विजय हेमरत्नसूरीश्वरजी म.सा.
9) रीसर्च ऑफ डाईनिंग टेबल	पू. आचार्य श्रीमद् विजय हेमरत्नसूरीश्वरजी म.सा.
10) जैन तत्त्वज्ञान चित्रावली प्रकाश	पू. आचार्य श्रीमद् विजय जयसुंदरसूरीश्वरजी म.सा.
11) अपनी सच्ची भूगोल	पू. पंन्यास श्री अभयसागरजी म.सा.
12) सूत्रोना रहस्यो	पू. पंन्यास श्री मेघदर्शन विजयजी म.सा.
13) गुड बॉय	पू. पंन्यास श्री वैराग्यरत्न विजयजी म.सा.
14) हेम संस्कार सौरभ/जैन तत्त्व दर्शन	पू. पंन्यास श्री उदयप्रभविजयजी म.सा.
15) आवश्यक क्रिया साधना	पू. मुनिराज श्री रम्यदर्शन विजयजी म.सा.
16) गुरु राजेन्द्र विद्या संस्कार वाटिका	पू. साध्वीजी श्री मणिप्रभाश्रीजी म.सा.
17) पच्चीस बोल	पू. महाश्रमणी श्री विजयश्री *आर्या*

अनुक्रमणिका

1) तीर्थंकर परिचय

A. श्री 24 तीर्थंकर भगवान के कल्याणक तिथि व अन्य जानकारी 7

2) काव्य संग्रह

A. प्रार्थना – श्री पंच परमेष्ठि प्रार्थना 8

B. प्रभु सन्मुख बोलने की स्तुति सिद्धाचलजी की 5 स्तुति 8

C. (अ) श्री आदिश्वर भगवान का चैत्यवंदन 9

(आ) श्री शांतिनाथ जिन चैत्यवंदन 10

D. (अ) श्री आदिनाथ जिन स्तवन 10

(आ) माता मरूदेवी ना नंद 10

(इ) श्री शांतिनाथ जिन स्तवन 11

(ई) शांति जिनेश्वर साचो 11

E. (अ) श्री आदिनाथ जिन स्तुति 11

(आ) श्री शांतिनाथ जिन स्तुति 11

F. (अ) स्वार्थ का साथी 12

(आ) महापुरूषों की सज्झाय 13

3) जिन मन्दिर विधि 14

4) पांच ज्ञान

A. ज्ञान की आशातना 18

ज्ञान पूजन की विधि 27

5) नवपद

A. नमस्कार महामंत्र 28

6) नाद घोष

A. तपस्या सम्बन्धी 36

7) मेरे गुरू

A. गोचरी का लाभ लेने की विधि 36

B. गोचरी में उपयोग रखने संबंधि कुछ बातें 37

8) दिनचर्या

A. रात्रि शयन विधि 40

B. श्रावक के दैनिक 36 कर्त्तव्य 41

9) भोजन विवेक

A. रात्रिभोजन त्याग 43

B. रात्रिभोजन – जैनेतर दर्शन की दृष्टि से 45

C. रात्रिभोजन – जैनेतर ग्रंथों के आधार पर 45

D. रात्रिभोजन – डॉक्टर/वैद्यों की दृष्टि से 47

E. रात्रिभोजन – सर्वसामान्य की दृष्टि से 48

10) माता-पिता उपकार

A. माता-पिता के चरण स्पर्श करना 52

B. अनाथाश्रम की मुलाकात लेना 55

C. उपकार को भूलना नहीं 56

11) जीवदया-जयणा

A. स्वयोग्य पर्याप्तियाँ 58

B. जीवन में आचरने योग्य जयणा की समझ 59

C. जयणा के स्थान 60

D. सचित्त-अचित्त की समझ 63

E. एकेन्द्रिय के 22 भेद 65

F. बेइन्द्रिय 65

G. तेइन्द्रिय 66

H. चउरिन्द्रिय 66

I. संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच 67

J. संमूर्च्छिम मनुष्य 67

K. मनुष्य के 14 अशुचि स्थान 67

L. जयणा के नियम 67

M. गर्भज मनुष्य 68

12) विनय – विवेक

A. सावधान! आप देवद्रव्य के कर्जदार तो नहीं... 69

13) सम्यग ज्ञान

A. कर्म के भेद-प्रभेद की पहचान 73

B. नव तत्त्व 81

C. सदाचार गुण 90

14) जैन भूगोल

A. क्या पृथ्वी घुमती है? 94

B. पृथ्वी फिरती होती तो? 95

C. पृथ्वी घूमती नहीं है 95

D. रात दिन कैसे होते है 97

15) सूत्र एवं विधि

A. सूत्र 98

B. अर्थ 98

C. विधि 98

D. पच्चक्खाण – तिविहार, चउविहार, पाणहार 98

16) कहानी

A. श्री वज्रस्वामी 99

B. श्री नागकेतु 105

C. श्री संप्रति महाराजा 107

D. रात्रिभोजन त्याग का कथानक 110

E. निर्दोष सीताजी पर कलंक क्यों आया? 118

17) प्रश्नोत्तरी 120

18) सामान्य ज्ञान

A. Game – 24 तीर्थंकरों का परिचय 123

B. चित्रावली 124

रंगीन चित्र-मुँहपत्ति तथा शरीर की प्रतिलेखना के 50 बोल का सचित्र सरल ज्ञान

1. तीर्थंकर परिचय

A. श्री 24 तीर्थंकर भगवान के कल्याणक एव अन्य जानकारी

क्र	तीर्थंकर	च्यवन तिथि	च्यवन स्थल	दीक्षातिथि	दीक्षा स्थल	शरीर प्रमाण	जन्म नक्षत्र	आयुष्य
1	श्री ऋषभदेवजी	आषाढ़ कृष्णा 4	अयोध्या	चैत्र कृष्णा 8	अयोध्या	500 धनुष	उषरषाढ़ा	84 लाख पूर्व
2	श्री अजितनाथजी	वैशाख शुक्ला 13	अयोध्या	माघ शुक्ला 9	अयोध्या	450 धनुष	रोहिणी	72 लाख पूर्व
3	श्री संभवनाथजी	फाल्गुन शुक्ला 8	श्रावस्ती	मिगसर पूर्णिमा	श्रावस्ती	400 धनुष	मृगशिर	62 लाख पूर्व
4	श्री अभिनंदनस्वामीजी	वैशाख शुक्ला 4	अयोध्या	माघ शुक्ला 12	अयोध्या	350 धनुष	पुनर्वसु	50 लाख पूर्व
5	श्री सुमतिनाथजी	श्रावण शुक्ला 2	अयोध्या	वैशाख शुक्ला 9	अयोध्या	300 धनुष	मघा	40 लाख पूर्व
6	श्री पद्मप्रभस्वामीजी	माघ कृष्णा 6	कौशाम्बी	कार्तिक कृष्णा 13	कौशाम्बी	250 धनुष	चित्रा	30 लाख पूर्व
7	श्री सुपार्श्वनाथजी	भाद्रवा कृष्ण 8	काशी	ज्येष्ठ शुक्ला 13	वाराणसी	200 धनुष	विशाखा	20 लाख पूर्व
8	श्री चन्द्रप्रभस्वामीजी	चैत्र कृष्णा 5	चन्द्रपुरी	पौष कृष्णा 13	चन्द्रपुरी	150 धनुष	अनुराधा	10 लाख पूर्व
9	श्री सुविधिनाथजी	फाल्गुन कृष्णा 9	काकंदी	मिगसर कृष्णा 6	काकन्दी	100 धनुष	मूला	2 लाख पूर्व
10	श्री शीतलनाथजी	वैशाख कृष्णा 6	भद्दिलपुर	माघ कृष्णा 12	भद्दिलपुर	90 धनुष	पूर्वाषाढ़ा	1 लाख पूर्व
11	श्री श्रेयांसनाथजी	ज्येष्ठ कृष्णा 6	सिंहपुरी	फाल्गुण कृष्णा 13	सिंहपुर	80 धनुष	श्रवण	84 लाख वर्ष
12	श्री वासुपूज्यस्वामीजी	ज्येष्ठ शुक्ला 9	चंपापुरी	फाल्गुन अमावस्या	चंपापुरी	70 धनुष	शतभिषाखा	72 लाख वर्ष
13	श्री विमलनाथजी	वैशाख शुक्ला 12	कम्पिलाजी	माघ शुक्ला 4	कंपिलाजी	60 धनुष	उत्तराभाद्रपद	60 लाख वर्ष
14	श्री अनन्तनाथजी	श्रावण कृष्णा7	अयोध्या	वैशाख कृष्णा 14	अयोध्या	50 धनुष	रेवती	30 लाख वर्ष
15	श्री धर्मनाथजी	वैशाख शुक्ला 7	रत्नपुरी	माघ शुक्ला 13	रत्नपुरी	45 धनुष	पुष्य	10 लाख वर्ष
16	श्री शांतिनाथजी	भाद्रवा कृष्ण 7	हस्तिनापुर	ज्येष्ठ कृष्णा 14	हस्तिनापुर	40 धनुष	भरणी	1 लाख वर्ष
17	श्री कुंथुनाथजी	श्रावण कृष्णा 9	हस्तिनापुर	वैशाख कृष्णा 5	हस्तिनापुर	35 धनुष	कृत्तिका	95 हजार वर्ष
18	श्री अरनाथजी	फाल्गुन शुक्ला 2	हस्तिनापुर	मिगसर शुक्ला 11	हस्तिनापुर	30 धनुष	रेवती	84 हजार वर्ष
19	श्री मल्लिनाथजी	फाल्गुन शुक्ला 4	मिथिला	मिगसर शुक्ला 11	मिथिला	25 धनुष	अश्विनी	55 हजार वर्ष
20	श्री मुनिसुव्रतस्वामीजी	श्रावण पूर्णिमा	राजगृही	फाल्गुन शुक्ला 12	राजगृही	20 धनुष	श्रवण	30 हजार वर्ष
21	श्री नमिनाथजी	आसोज पूर्णिमा	मिथिला	आषाढ़ कृष्णा 9	मिथिला	15 धनुष	अश्विनी	10 हजार वर्ष
22	श्री नेमिनाथजी	कार्तिक कृष्णा 12	सौरीपुर	श्रावण शुक्ला 6	सौरीपुर	10 धनुष	चित्रा	1000 वर्ष
23	श्री पार्श्वनाथजी	चैत्र कृष्णा 4	काशी	पौष कृष्णा 11	वाराणसी	9 हाथ	अनुराधा	100 वर्ष
24	श्री महावीरस्वामीजी	आषाढ़ शुक्ला 6	क्षत्रियकुण्ड	मिगसर कृष्णा 10	क्षत्रियकुंड	7 हाथ	उत्तरा फाल्गुनी	72 वर्ष

* काशी - बनारस - वाराणसी - वाणारसी (भदैनी या भेलुपुर) भी कहते है।

2. काव्य संग्रह

A. श्री पंच परमेष्ठि प्रार्थना

अरिहा सरणं सिद्धा सरणं, साहु सरणं वरीये,
धम्मो सरणं पामी विनये, जिन आणा शिर धरिये... 1

अरिहा सरणं मुजने होजो, आतम शुद्धि करवा
सिद्धा सरणं मुजने होजो, राग-द्वेष ने हणवा... 2

साहु सरणं मुजने होजो, संयम शूरा बनवा
धम्मो सरणं मुजने होजो, भवोदधिथी तरवा... 3

मंगलमय चारेनुं शरणु, सघली आपदा टाले
चिद्घन केरी डुबती नया, शाश्वत नगरे वाले... 4

भवोभवना पापो ने मारा, अंतर थी हुं निंदु छुं
सर्व जीवोना सुकृतोने, अंतरथी अनुमोदु छुं 5

लाख चौराशी जीवयोनीने, अंतरथी खमावु छुं
सर्व जीवोनी साथे हुं तो, मैत्री भावना भावु छुं 6

जगमां जे जे दुर्जन जन छे, ते सघला सज्जन थाओ
सज्जन जनने मन सुखदायी, शांतिनो अनुभव थाओ 7

शांतजीवो आधि-व्याधिने, उपाधिथी मुक्त बनो
मुक्त बनेला पुरुषोत्तम आ, सकल विश्वने मुक्त करो 8

B. प्रभु सन्मुख बोलने की स्तुति

सिद्धाचलजी की 5 स्तुति

(राग: एवा प्रभु अरिहंत ने पंचांग भावे हुं नमुं)

अ) जय तलेटी की स्तुति

विद्याधरों ने इन्द्र देवों जेहने सदा पूजतां,
दादा सीमंधर देशनामां जेहना गुण गावतां,
जीवों अनंता जेहना सानिध्यथी मोक्षे जतां
ते विमल गिरिवर वंदता मुज पाप सहु दूरे थतां ।।

आ) श्री शांतिनाथ भगवान की स्तुति

षट्खंडना विजयी बनीने चक्रीपदने पामतां,
षोडश कषायों परिहरीने सोलमा जिन राजतां,
चोमासुं रही गिरिराज पर जे भव्यने उपदेशतां,
ते शांति जिनने वंदता, मुज पाप सहुं दूरे थतां ।।

इ) श्री रायण पगला की स्तुति

जेने झरतुं क्षीर पुण्ये मस्तके जेने पडे,
ते त्रण भवमां कर्म तोडी सिद्धि शिखरे जइ चडे,
ज्यां आदि जिन नव्वाणुं पूर्व आवी वाणी सुणावतां,
ते रायण पगला वंदता, मुज पाप सहुं दूरे थतां ।।

ई) श्री पुंडरिक स्वामी की स्तुति

जे आदि जिननी आण पामी सिद्धगिरि ए वसतां,
अणसण करी अेक मासनुं मुनि पंचक्रोडशुं सिद्धतां,
जे नाम थी पुंडरिकगिरि, अेम चिहुं जगत बीरदावता,
ते पुंडरिक स्वामी वंदता मुज पाप सहुं दूरे थतां ।।

उ) श्री आदिनाथ जिन स्तुति

जे राज राजेश्वर तणी अद्भूत छटाअे राजतां,
शाश्वत गिरिना उच्च शिखरे नाथ जगना शोभतां,
जेओ प्रचंड प्रतापथी जग मोहने निवारतां,
ते आदि जिनने वंदता मुज पाप सहुं दूरे थतां ।।

C. चैत्यवंदन

अ) श्री आदेश्वर भगवान का चैत्यवंदन

आदिदेव अलवेसरु, विनीतानो राय,
नाभिराया कुलमंडणो, मरुदेवा माय ।। 1 ।।
पांचसे धनुषनी देहडी, प्रभुजी परम दयाल,
चोराशी लाख पूर्वनुं, जस आयु विशाल ।। 2 ।।
वृषभ लंछन जिन वृषधरु ए, उत्तम गुणमणि खाण,
तस पद पद्म सेवन थकी , लहीये अविचल ठाण ।। 3 ।।

आ) श्री शांतिनाथ जिन चैत्यवंदन

शांति जिनेसर सोलमा, अचिरा सुत वंदो,
विश्वसेन कुल नभोमणि, भविजन सुख कंदो, .1
मृग लंछन जिन आउखुं, लाख वरस प्रमाण,
हत्थिणाउर नयरी धणी, प्रभुजी गुणमणि खाण, .2
चालीस धनुषनी देहडी ए, सम चोरस संठाण,
वंदन पद्म ज्युं चंदलो, दीठे परम कल्याण .3

D. स्तवन

अ) श्री आदिनाथ जिन स्तवन

दादा आदेश्वरजी, दादा आदेश्वरजी, दूरथी आव्यो दादा दर्शन द्यो,
कोई आवे हाथी घोडे, कोई आवे चढे पलाणे, कोई आवे पग पाले,
दादाने दरबार, हां हां दादाने दरबार. दादा आदेश्वरजी..1

सेठ आवे हाथी घोडे, राजा आवे चढे पलाणे, हुं आवुं पग पाले,
दादाने दरबार, हां हां दादाने दरबार. दादा आदेश्वरजी..2

कोई मूके सोना रुपा, कोई मूके महोर, कोई मूके चपटी चोखा,
दादाने दरबार, हां हां दादाने दरबार. दादा आदेश्वरजी..3

सेठ मूके सोना रुपा, राजा मूके महोर, हुं मूकुं चपटी चोखा,
दादाने दरबार, हां हां दादाने दरबार. दादा आदेश्वरजी..4

कोई मांगे कंचन काया, कोई मांगे आंख, कोई मांगे चरणोनी सेवा,
दादाने दरबार, हां हां दादाने दरबार. दादा आदेश्वरजी..5

पांगलो मांगे कंचनकाया, आंधलो मांगे आंख, हुं मांगु चरणोनी सेवा,
दादाने दरबार, हां हां दादाने दरबार. दादा आदेश्वरजी..6

हीरविजय गुरु हीरलोने,वीर विजय गुण गाय, शत्रुंजय ना दर्शन करता,
आनंद अपार, हां हां आनंद अपार. दादा आदेश्वरजी..7

आ) माता मरुदेवीना नंद

माता मरुदेवीना नंद, देखी ताहरी मूरति
मारुं मन लोभाणुंजी, मारुं दिल लोभाणुंजी. माता .1

करुणानागर करुणासागर, काया कंचनवान
धोरी लंछन पाउले कांई, धनुष्य पांचशे मान. 2

त्रिगडे बेसी धर्म कहंता, सुणे पर्षदा बार,
जोजनगामिनी वाणी मीठी, वरसंती जलधार. 3

उर्वशी रूडी अपछरा ने, रामा छे मन रंग,
पाये नेउर रणझणे कांई, करती नाटारंभ. 4

तु ही ब्रह्म , तुं ही विधाता, तुं जग तारणहार,
तुज सरीखो नहि देव जगतमां, अरवडीआ आधार. 5

तुं ही भ्राता तुं ही त्राता, तुं ही जगतनो देव,
सुरनर किन्नर वासुदेवा, करता तुज पद सेव. 6

श्री सिद्धाचल तीरथ केरो, राजा ऋषभ जिणंद,
कीर्ति करे माणेक मुनि ताहरी, टालो भवभय फंद. 7

इ) श्री शांतिनाथ जिन स्तवन

म्हारो मुजरो ल्योने राज, साहिब शांति सलुणा
अचिराजी ना नंदन तोरे, दरिसन हेते आव्यो,
समकित रीझ करोने स्वामी, भक्ति भेटणुं लाव्यो म्हारो...

दुःख भंजन छे बिरुद तमारुं, अमने आशा तुम्हारी ,
तुमे निरागी थइने छुटो, शी गति होशे हमारी म्हारो ...

कहेशे लोक न ताणी कहेवु, अेवडु स्वामी आगे,
पण बालक जो बोली न जाणे, तो केम व्हालो लागे म्हारो ...

म्हारे तो तुं समरथ साहिब, तो केम ओछुं आणु,
चिन्तामणि जेणे गांठे बांध्यु , तेहने काम किश्यानुं म्हारो ...

अध्यात्म रवि उग्यो मुज घट, मोह तिमिर हर्यु जुगते ,
विमल विजय वाचक नो सेवक, राम कहे शुभ भगते म्हारो ...

ई) शांति जिनेश्वर साचो

शांति जिनेश्वर साचो साहिब, शांति करण इण कलि में,
हो जिनजी, तुं मेरा मनमें तुं मेरा दिल में. ध्यान धरुं पल पल में साहेबजी... तुं मेरा... ॥ 1 ॥
भवमां भमतां में दरिशन पायो, आशा पूरो एक पल में हो जिनजी, तुं मेरा... ॥ 2 ॥
निरमल ज्योत वदन पर सोहे, निकस्यो ज्युं चंद बादल मे हो जिनजी... तुं मेरा... ॥ 3 ॥
मेरो मन तुम साथे लीनो, मीन वसे ज्युं जलमे हो जिनजी ... तुं मेरा... ॥ 4 ॥
जिनरंग कहे प्रभु शांति जिनेश्वर, दिठोजी देव सकल में हो जिनजी... तुं मेरा... ॥ 5 ॥

E. स्तुति

अ) श्री आदिनाथ जिन स्तुति

आदि जिनवर राया, जास सोवन्न काया, मरुदेवी माया, धोरी लंछन पाया,
जगत स्थिति निपाया, शुद्ध चारित्र पाया, केवलसिरी राया, मोक्ष नगरे सिधाया ॥ 1 ॥

सवि जिन सुखकारी, मोह मिथ्या निवारी, दुर्गति दुःख भारी, शोक संताप वारी,
श्रेणी क्षपक सुधारी, केवलानंत धारी, नमिये नरनारी, जेह विश्वोपकारी ॥ 2 ॥

समवसरणे बेठा, लागे जे जिनजी मीठा, करे गणप पइट्ठा, इन्द्र चन्द्रादि दिट्ठा,
द्वादशांगी वरिट्ठा, गुंथतां टाले रिट्ठा, भविजन होय हिट्ठा , देखि पुण्ये गरिट्ठा ॥ 3 ॥

सुर समकित वंता , जेह ऋद्धे महंता, जेह सज्जन संता, टालिये मुज चिंता,
जिनवर सेवंता, विघ्न वारे दूरंता, जिन उत्तम थुणंता, पद्मने सुख दिंता ॥ 4 ॥

आ) श्री शांतिनाथ जिन स्तुति

वंदो जिन शांति, जास सोवन्न कांति, टाले भव भ्रांति, मोह मिथ्यात्व शांति,
द्रव्य भाव अरि पांति, तास करता निकांति, धरता मन खांति, शोक संताप वांति. ॥ 1 ॥

दोय जिनवर नीला, दोय धोला सुशीला, दोय रक्त रंगीला, काढता कर्म कीला,
न करे कोई हीला, दोय श्याम सलीला, सोल स्वामीजी पीला, आपजो मोक्ष लीला ॥ 2 ॥

जिनवरनी वाणी मोहबल्ली कृपाणी, सूत्रे देवाजी, साधुने योग्य जाणी।
अरथे गूंथाणी, देव मनुष्य प्राणी, प्रणमों हित आणी, मोक्षणी ए निशाणी॥ ॥ 3 ॥

वाघेसरी देवी, हर्ष हियडे धरेवी, जिनवर पय सेवी, सार श्रद्धा वरेवी।
जे नित्य समरेवी, दुःख तेहना हरेवी, पद्म विजय कहेवी, भव्य संताप खेवी॥ ॥ 4 ॥

F. सज्झाय

अ) स्वार्थ का साथी

जगत है स्वार्थ का साथी, समझ ले कौन है अपना,
ये काया काँचका कुंभा, नाहक तुं देखके फूलता,
पलक में फूट जावेगा, पता ज्युं डालसे गिरता जगत. ॥1 ॥

मनुष्य की ऐसी जिंदगानी, अभी तुं चेत अभिमानी,
जीवन का क्या भरोसा है, करी ले धर्म की करणी जगत. ॥2 ॥

खजाना माल ने मंदिर, क्युं कहेता मेरा मेरा तुं,
यहाँ सब छोड जाना है, न आवे साथ कुछ तेरे जगत. ॥3॥

कुटुंब परिवार सुत दारा, सुपन सम देख जग सारा,
निकल जब हंस जावेगा, उसी दिन है सभी न्यारा जगत. ॥4॥

तरे संसार सागर को, जपे जो नाम जिनवर को,
कहे खान्ति येही प्राणी हटावे कर्म जंजीर को जगत. ॥5॥

आ) महापुरूषों की सज्झाय

जुओ रे जुओ जैनो, केवा व्रतधारी,
केवा व्रतधारी, आगे थया नर नारी,
थया नर नारी, तेने वंदना हमारी ... जुओ रे ॥ 1 ॥

जुओ जुआं जंबुस्वामी, बालवये बोधपामी,
तजी भोग ऋद्धि जेने, तजी आठ नारी... तजी आठ नारी... जुओ रे ॥ 2 ॥

गजसुकुमाल मुनि; धखे सिर पर धूणी,
अडग रह्या ते ध्याने, डग्या न लगारी... डग्या न लगारी... जुओ रे ॥ 3 ॥

कोश्याना मंदिर मध्ये, रह्या मुनि स्थुलीभद्र
वेश्या संग वासो तोये, थया न विकारी... थया न विकारी... जुओ रे ॥ 4 ॥

कीधां उपसर्ग मघवे, सह्यां ए तो कामदेवे
रह्यां पडिमा मा ध्याने, चल्या ना लगारी... चल्या न लगारी... जुओ रे ॥ 5 ॥

सती ते राजुलनारी, जग मां न जोडी एनी,
पतिव्रत काजे कन्या, रही ते कुंवारी... रही ते कुंवारी... जुओ रे ॥ 6 ॥

जनकसुता जे सीता, बार वर्ष वनमां वीत्या,
घणुं कष्ट वेठ्यु तोये, डग्या न लगारी... डग्या न लगारी... जुओ रे ॥ 7 ॥

धन्य धन्य नर नारी, थया एवा टेकधारी,
जीवित सुधार्युं जेणे, पाम्या भवपारी... पाम्या भवपारी... जुओ रे ॥ 8 ॥

एवुं जाणी सुज्ञ जैनो, एवा उत्तम आप बनो,
वीर विजय धर्म प्रेमे, दीओ गति सारी ... दीओ गति सारी... जुओ रे ॥ 9 ॥

३. जिन मंदिर विधि

प्रश्न: पूजा के कितने प्रकार हैं?

उत्तर: पूजा के दो प्रकार हैं

1. **द्रव्य पूजा** : जल, चंदन आदि द्रव्यों से की जाने वाली प्रभु की पूजा।
2. **भाव पूजा** : स्तवन, स्तुति चैत्यवंदन आदि से प्रभु के गुणगान करना।

प्रश्न: प्रभु की द्रव्यपूजा करने से कच्चे पानी, फूल, धूप, दीप, चंदन घिसना वगैरह से जीव विराधना होती है, उसमें पाप नहीं लगता?

उत्तर: जो जीव संसार के छः काय के कूटे में बैठा है और नश्वर शरीर के लिये सतत पाप कर रहा है वैसा जीव आत्मा में भावोल्लास लाने के लिये प्रभु की द्रव्य पूजा करें यह उचित है। जयणा पूर्वक प्रभु की द्रव्य पूजा करने पर उसे तनिक भी पाप नहीं लगता। प्रत्युत अनेक गुण निर्जरा ही होती है। ललित विस्तरा ग्रंथ में कहा गया है कि जो व्यक्ति पुष्पादि के जीवों की दया सोचकर पूजा नहीं करता एवं अपने लिये धंधे आदि में एवं घर में अनेक जीवों का संहार करता है, उसे पूजा नहीं करने के कारण महापाप लगता है।

प्रश्न: द्रव्य पूजा से आत्मा को लाभ होता है, यह कैसे समझा जा सकता है ।

उत्तर: शास्त्रकारों ने यह समझाने के लिये कूप दृष्टांत दिया है। जैसे कोई व्यक्ति पानी के लिये कुआँ खोदता है। तो कुआँ खोदते समय उसकी तृषा बढ़ती है, कपडे गंदे होते हैं एवं थकान भी लगती है। फिर भी वह कुआँ इसलिये खोदता है कि एक बार पानी की शेर मिल जाने पर हमेशा के लिये तृषा शमन, कपड़े साफ करना एवं स्नान से थकान उतारने का आसान बन सकता है। उसी प्रकार द्रव्य पूजा में यद्यपि बाह्य रुप से हिंसा दिखती है। लेकिन उससे उत्पन्न होने वाले भाव से संसार के आरंभ-समारंभ कम हो जाते हैं। एवं किसी जीव को द्रव्य पूजा करते-करते दीक्षा के भाव भी आ सकते हैं। जिससे आजीवन छः काय की विराधना अटक जाती है।

प्रश्न: साधु भगवंत पूजा क्यों नहीं करते?

उत्तर: संसार के त्यागी साधु भगवंत जल, पुष्पादि की विराधना से सर्वथा अटके हुए होते हैं। उनके भावों में सतत पवित्रता बनी रहती है। बिना द्रव्य पूजा ही शुद्ध भाव प्राप्त होने से उन्हें द्रव्य पूजा की आवश्यकता नहीं रहती है। क्योंकि उन्होंने द्रव्य का ही त्याग कर दिया है।

प्रश्न: भगवान तो कृतार्थ हैं, उनको किसी चीज की जरुरत नहीं होती तो उनको उत्तम द्रव्य क्यों चढाना?

उत्तर: प्रभु वीतराग है, लेकिन हम रागी होने से संसार में कहीं न कहीं प्रेम कर बैठते हैं.... फिर प्रेम में बढावा करने के लिये एक दूसरे को कुछ देते हैं। जब हम प्रभु को कुछ समर्पित करते हैं तो अपना प्रेम संसार की मोह दिशा छोडकर प्रभु के साथ बढने लगता है। जिससे हमें निस्वार्थ प्रेम की सच्ची अनुभूति होती है एवं आनंद आता है। सामान्य से द्रव्य जितना उत्तम होता है, उतने

ही भाव उत्तम होते हैं, एवं यही उत्तम वस्तु का श्रेष्ठ उपयोग है।

प्रश्न: प्रभु तो वीतरागी हैं तो उनसे किया गया प्रेम किस काम का?

उत्तर: इसका जवाब उपाध्यायजी म.सा. ने धर्मनाथ भगवान के स्तवन में दिया है:

निरागी सेवे कांई होवे, प्रभु भक्ति मन मां नवि आणुं
फले अचेतन पण जिम सुरमणि,
तिम तुम भक्ति प्रमाणुं....थाशुं...2
चंदन शीतलता उपजावे, अग्नि ते शीत मिटावे
सेवकना तिम दु:ख गमावे,
प्रभु गुण प्रेम स्वभावे..थाशुं...3

स्तवन की पंक्तियाँ बताती है कि आप मन मे ऐसा मत सोचना कि भगवान तो वीतराग है तो इनकी सेवा किस काम की? जब अचेतन (जड) चिंतामणि रत्न अगर उसकी सेवा करने वाले को फल दे सकता है, तो सचेतन ऐसे प्रभु की सेवा फल क्यों नहीं दे सकती? तथा जैसे चंदन किसी को ठंडक देने का सोचता नहीं है लेकिन जो उसका उपयोग करता है, उसे ठंडक देता है। अग्नि का स्वभाव है ठंडी दूर करना, उसी प्रकार प्रभु का स्वभाव है सेवक के दु:ख दूर करना। यह दु:ख दूर करने का कार्य उनके स्वभाव से ही हो जाता है। उत्कृष्ट पुण्य बंध का कारण प्रभु ही है। प्रभु पुण्य पैदा कर सर्व सुख देने में समर्थ हैं। अत: प्रभु की खूब सेवा करनी चाहिये।

प्रश्न: प्रभु के दर्शन क्यों और किस भाव से करने चाहिये?

उत्तर: प्रभु के दर्शन से अपनी अशांत आत्मा शांत भाव को प्राप्त करती है। प्रभु को देखने से हमें अपनी आत्म दशा का भान होता है। जीव मोहदशा में आत्मा को भूलकर पुद्गल से प्रेम करने लगता है। जिसमें जीव के अंत में दु:खी होना पड़ता है। लेकिन प्रभु को देखने से ऐसा लगता है जैसे मेरी आत्मा भी ऐसी ही है और समान जातीय होने से प्रभु के साथ जीव तुलना करने लगता है। उसे लगता है कि, मैंने पुद्गल के मोह में कैसे-कैसे राग द्वेष कर अपने आप को दु:खी किया। अब मैं भी प्रभु कृपा से उनके प्रति प्रेम करने से प्रभु जैसा बनूँ। ऐसी भावना मन में आने लगती है।

प्रश्न: प्रभुभक्ति विधिवत् करने के लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर: प्रभुभक्ति को विधिवत् करने के लिये दशत्रिक एवं पाँच अभिगम जानना जरुरी है।

प्रश्न: दशत्रिक का मतलब समझाओ ?

उत्तर: दशत्रिक यानि तीन-तीन प्रकारवाली दश बातें। मंदिरजी में इन दश बातों का ध्यान रखना खूब जरूरी है। इन त्रिक के पालन से आशातना दूर होती है एवं विशिष्ट आराधना होती है।

प्रश्न: दशत्रिक के नाम बताओ?

उत्तर: निसीहि, प्रदक्षिणा, प्रणाम, पूजा, अवस्था, त्रिदिशिवर्जन, प्रमार्जना, आलम्बन, मुद्रा एवं प्रणिधान यह दश त्रिक हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन पूर्व में दिया गया है। यहाँ विधि के अंतर्गत जहाँ

जिस त्रिक अथवा उसका पेटा भेद है, वहाँ यथाक्रम बताया जायेगा।

प्रश्न: दश त्रिक का पालन मंदिर में किस क्रम में करना चाहिये।

उत्तर: * सर्वप्रथम पहली निसीही बोलकर प्रवेश करें। (1/1)

* प्रभु का मुख देखते ही अंजलिबद्ध प्रणाम कर 'नमो जिणाणं' बोलें (3/1)
* तत्पश्चात् तीन प्रदक्षिणा। (2-3)
* उसके बाद अर्धावनत प्रणाम कर स्तुति बोलें। (3/2)
* फिर जयणापूर्वक पूजा की सामग्री तैयार करें।
* बाद में गंभारे में प्रवेश करते समय दूसरी निसीही बोलें।(1/2)
* फिर गंभारे में प्रभु की अंगपूजा करें।(4/1)
* तत्पश्चात् बाहर आकर अग्रपूजा-धूप, दीप तथा चामर, दर्पण, पंखा वगेरे करें।(4/2)
* फिर अक्षत्, नैवेद्य तथा फल पूजा करें। (4/2)
* उसके बाद तीसरी निसिहि करें।(1/3)
* फिर तीन प्रमार्जना करें। (7-3) तत्पश्चात् त्रिदिशिवर्जन त्रिक (6-3)। पंचाग प्रणिपात प्रणाम करें (3/3), भाव पूजा (चैत्यवंदन) करें (4/3), प्रणिधान त्रिक (10-3), आलम्बन त्रिक (8-3) तथा मुद्रात्रिक (9-3) का उपयोग रखते हुए चैत्यवंदन करें। अंत में अवस्था त्रिक का ध्यान करें। (5-3)

<u>नोट :</u> जो प्रथम नंबर दिये गये है, वे दशत्रिक के मूल भेद के हैं। दूसरे नंबर पेटा भेद के हैं जहाँ '-' करके तीन नंबर दिये हैं वहाँ तीनों भेद समझना।

अंत में घर जाते समय हर्ष का अतिरेक प्रदर्शित करने हेतु घंट नाद करें अंगपूजा के दौरान स्नात्रपूजा वगैरे पढा सकते हैं।

प्रश्न:पाँच अभिगम (विनय) समझाओ?

उत्तर:**1.सचित्त का त्याग :-**

यहाँ सचित्त के उपलक्षण से खाने-पीने एवं अपने उपयोग करने की समग्र सामग्री का त्याग करके मंदिर जाना। यानि जेब में दवा, मुखवास, मावा, मसाला, सिगरेट, छींकणी, सेंट वगैरे पास में कुछ भी नहीं होना चाहिये। भूल से रह गयी हो तो उसका उपयोग नहीं करके पुजारी को दे देना अथवा बाहर मिट्टी में मिला देना। तथा बूट-चप्पल वगैरे भी पहनकर नहीं जा सकते हैं।

2. अचित्त का अत्याग :

जैसे मंदिर जाते समय अपने उपयोग की वस्तु का त्याग करने का है, उसी प्रकार प्रभु भक्ति के लिये धूप-दीप, अक्षत, नैवेद्य, वगैरे सामग्री लेकर जाना चाहिये। यहाँ अचित्त के उपलक्षण से प्रभु की पूजा योग्य सर्व सामग्री समझना, देवदर्शन में खाली हाथ नहीं जाना, कुछ नहीं तो भंडार में पुरने के लिये पैसा तो लेकर ही जाना चाहिये।

3. उत्तरासन :

पुरुषों को मंदिर में प्रवेश करते समय कंधे के ऊपर खेस डालना एवं स्त्रियों को सिरपर ओढना चाहिये।

4. अंजलि :

दूर से शिखर या ध्वजा दिखे तब एवं मंदिर में प्रवेश करते समय सर्व प्रथम प्रभु नजर में आये तब दो हाथ जोड़कर मस्तक झुकाना। यदि सामग्री हाथ में हो तो मात्र मस्तक झुकाकर 'नमो जिणाणं' कहना चाहिये।

5. प्रणिधान:

प्रभु को देखते ही सारी दुनिया भूलकर उनमें एकाग्र बन जाना। आत्म प्रदेशों के कोने-कोने में प्रभु का वास हो जाना चाहिये।

प्रश्न: पूजा के लिये कितने प्रकार की शुद्धि रखनी आवश्यक है।

उत्तर: सात प्रकार की।

1. **अंग शुद्धि :** जीव रहित भूमि पर परात में स्नानकर पानी को सूखी जगह अथवा छत पर जयणा से परठना।
2. **वस्त्र शुद्धि** : अबोट वस्त्र पहनना। पूजा के वस्त्र किसी अन्य कार्य में उपयोग में नहीं लेंवे।
3. **मन शुद्धि** : मन को प्रभु के गुणों के स्मरण में लीन रखना।
4. **भूमि शुद्धि :** जिस जगह द्रव्य और भाव पूजा करनी है वह भूमि हाड़, मांस, बाल, नाखून आदि से रहित शुद्ध होनी चाहिये।
5. **उपकरण शुद्धि** : थाली, कटोरी, डब्बी, फूलदानी, कलश, अंगलूछणा, वगैरह उपकरण को धुपाना एवं शक्ति के अनुसार उत्तम स्व-द्रव्य एवं स्व-उपकरण से पूजा करनी चाहिये।
6. **द्रव्य शुद्धि** : कुएँ का अथवा शुद्ध नक्षत्र का पानी, गाय का दूध, घी, उत्तम सुगंधिदार धूप, बासमती चावल, शुद्ध घी का नैवेद्य एवं उत्तम जाति के फल आदि उत्तमोत्तम द्रव्य से प्रभु पूजा करनी चाहिये। द्रव्य जितना उत्तम होता है, उतने भावों की वृद्धि होने से फल भी उतना ही उत्तम मिलता है।
7. **विधि शुद्धि** : सारी क्रिया जयणा, उपयोगपूर्वक एवं विधि अनुसार करनी चाहिये।

प्रश्न: प्रभु की पूजा कब और कैसे करनी चाहिये ? उसका फल क्या है?

उत्तर: प्रभु की त्रिकाल पूजा करनी चाहिये।

1. **प्रात:** : सूर्योदय के बाद वासक्षेप पूजा-पूरे दिन के दु:ख को दूर करती है।
2. **मध्याह्न** : अष्टप्रकारी पूजा - पूरे जन्म के पापो का नाश करती है।
3. **संध्या में** : आरती, मंगल दीपक - सात भव के पाप नाश करती है।

4. पांच ज्ञान

A. ज्ञान की आशातना

हमें ज्ञान चढता न हो, तो उसका कारण हमारे द्वारा ही पूर्व भव में बांधा हुआ ज्ञानावरणीय कर्म ही है, अब उस कर्मबंधन से बचने के लिये और ज्ञान हमें चढे, हमारा पढा हुआ हमें याद रहे उसके लिए निम्नलिखित ज्ञान की आशातना से बचें:-

(अ) ज्ञान की आशातना:- धार्मिक सूत्र - ये ज्ञान है। इन सूत्रों को अशुद्ध पढना-पढाना भी ज्ञान की आशातना है और धार्मिक ज्ञान पढने के प्रति अरुचि या नापसंदगी बताना, पढने में प्रमाद करना, उकताहट बताना, पढा हुआ याद रखने का प्रयत्न न करना, पढने वाले को बाधा पहुँचाना, ये भी ज्ञान की आशातनाएँ है, अनादर है।

(आ) ज्ञान के साधनों की आशातना: - ज्ञान पढने में उपयोगी पुस्तक, सापडा, ठवणी, नवकारवाली, पेन, पेंसिल, स्केल और रबर आदि ज्ञान साधनों को थूक, पसीना लगाने से व अपने शरीर का मैल लगाने से, उन पर बैठने से, उन्हें पाँवों तले रौंदने से, लात मारने से, उन्हें साथ में रखकर खाने-पीने से, लघुशांका-दीर्घ शंका (संडास-पेशाब) करने से, उन्हें तोडने-फोडने से उनकी आशातना होती है।

ज्ञान की कोई भी वस्तु को गिराएँ नहीं, उसे पाँव न लगाएँ, पाँव का स्पर्श हो जाए तो मस्तक झुकाकर प्रणाम करें। पुस्तक को फेंके भी नहीं, न ही उसका तिरस्कार करें।

स्कूल से आने के पश्चात् पुस्तक का थैला-बेग चाहे जहाँ-तहाँ फेंकें नहीं, न ही लात मारें, बल्कि धीरे से अच्छे ढंग से योग्य स्थान पर रखें।

छपे हुए या कोरे कागज जलाएँ नहीं, उन पर पेशाब-शौचादि न करें, समाचार पत्र या पुट्ठे आदि पर बैठें नहीं, उस पर पाँव भी न रखें, कागज की डिश में बडे-भुजिये आदि न खाएँ, पार्टी वगैरह में भोजन के बाद कागज के नेपकिन से हाथ साफ न करें, क्योंकि अक्षर श्रुतज्ञान है और ये अक्षर जिस पर लिखे होते हैं वह धार्मिक या अधार्मिक पुस्तक-पेपर-कागज या बिना लिखा कागज भी ज्ञान का साधन है।

पेन-पैंसिल कागज आदि ज्ञान के साधन होने से उन्हें भी मुँह में, नाक में या कान में न डालें, क्योंकि उन्हें थूक या मैल लगने से ज्ञान की आशातना होती है।

पुस्तक-नोट बुक के पृष्ठ खोलते समय थूक न लगाएँ। सोते-सोते नहीं पढना चाहिए। मार्ग पर चलते समय कागज या अक्षरों पर भी पाँव न लगे इस प्रकार नीचे दृष्टि डालकर चलें। अक्षर वाले वस्त्र न पहने। कागजों को गटर में न फेंके, नाम या अक्षरवाली मिठाई-बिस्किट, चॉकलेट, पीपरमिंट न खाएँ।

इस प्रकार अन्य भी अनेक ज्ञान साधनों की आशातना के प्रकार है जिन्हें स्वयं समझकर ज्ञान की आशातना से बचें।

(इ) ज्ञानी की आशातना:– ज्ञान व ज्ञान के साधन की तरह ज्ञानी व्यक्ति की भी आशातना न की जाए। जैसे स्कूल के सर या मेडम हों, गुरू भगवंत हों, अपने विद्या गुरु हो, उनका विनय–सम्मान किया जाए, अनादर–तिरस्कार या निंदा न करें, उनके सामने न बोलें, उनकी हँसी–मजाक न करें, दुष्ट आचरण करने से ज्ञानी व्यक्ति की आशातना का पाप लगता है।

तो समझदार बाल श्रावकों ! जिस पुस्तक से आप ज्ञान प्राप्त करते हैं, जो व्यक्ति आपको ज्ञान देते हैं, उनकी आशातना उनके प्रति अविनय अब से मत करना। अच्छी तरह से समझ गए न ?

(ई) ज्ञान की आशातना से हानि:– जो लोग ज्ञान की आशातना स्वयं करते है अथवा अन्य के पास करवाते हैं, वे आगामी भवों में–जन्मों में अँधे–बहरे, गूँगे, तुतलाने वाले, पंगु, मूर्ख, मुँह के रोग वाले, कुष्ट रोग वाले और पराधीन बनते है। इतना ही नहीं, बल्कि बुद्धि भी प्राप्त नहीं होती, शरीर अपंग, त्रुटियुक्त मिलता है, ऐसा व्यक्ति जहाँ भी जाता है, वहाँ तिरस्कार प्राप्त करता है, दिन भर परिश्रम करने पर भी उसे पेट भरने जितना भोजन नहीं मिलता।

तो बच्चों ! यदि आपको जन्म–जन्मांतर में विद्वान–बुद्धिशाली, चतुर बनना है, सम्यग्ज्ञान का फल प्राप्त करना है और परीक्षा में उत्तीर्ण होना है तो ज्ञान की आशातना से सदैव दूर ही रहें।

(उ) ज्ञान की आराधना से लाभ:– ज्ञान के साधन व ज्ञान की आशातना का त्याग करने से सम्यग्ज्ञान की आराधना होती है, जिससे ज्ञानावरणीय कर्म का नाश होता है और जो पढते है वह स्मृति पटल पर गहन रूप से अंकित हो जाता है तथा परंपरा में केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

गाथा याद करते (रटते) समय निम्नलिखित चार बातों का विशेष ध्यान रखें– (अ) सूत्र का शुद्ध रुप में रटन करें (आ) सूत्रों में पाठ बढाकर न बोलें (इ) शब्द अथवा मात्रा घटाकर न बोलें (ई) विद्या विनयपूर्वक ग्रहण करें।

<u>सूत्रों का शुद्ध रटन करें:–</u> गाथा कंठस्थ करते समय शुद्ध रीति से रटें, अशुद्ध न रटें, अर्थात् अक्षर **क**, लिखा हो तो **ग** न बोलें, अथवा शब्द तोडकर न बोलें, अर्थात् जिसके साथ लिखा हुआ हो उसके साथ ही बोलें अन्यथा अर्थ का अनर्थ होता है। जैसे..

आपको मान (सम्मान) चाहिये। यदि इसमें अक्षर अलग–अलग कर देते हैं तो आपको मा न चाहिए (मा=मम्मी)

<u>जिज्ञासा</u> :– सूत्रों की शुद्धि–अशुद्धि पर इतना अधिक बल देने की क्या आवश्यकता है ? उसमें कुछ भी विशेष फर्क नहीं पडता ?

<u>समाधान</u> :– आपका प्रश्न सही है, परंतु उसका उत्तर मैं दूँ, इसके बजाय यहाँ आगे कही जाने वाली कुछ सुंदर कथाएँ ही इसका उत्तर आपको बहुत ही अच्छी तरह से दे देंगी। फर्क तो बहुत पडता है, अर्थ का अनर्थ हो जाता है, वह मै आपको बताता हूँ, कि पांडवों की माता का नाम क्या था ? = कुंती। अब यदि उस पर से बिंदु हटें तो शब्द बनता है= कुती, इसका अर्थ = कुतिया; तो अर्थ का अनर्थ हुआ या नहीं?

इसी प्रकार चैत्यवंदन शब्द में वंदन शब्द पर से बिंदु हटा दे, तो वदन शब्द हो जाता है, जिसका

अर्थ मुँह हो जाता है। तो आप देखेंगे कि यहाँ भी अर्थ बदल गया।

ऐसे ही अन्य भी अनेक शब्द है जिनमें बिंदु लगाने या हटाने से अर्थ बदल जाता है, जैसे उदर: उंदर (चूहा), पेंट: पेट, गांडी (पागल): गाडी, घंट: घट, भांग: भाग, बँगला: बगला (बगुला), चिंता: चिता, मंजूरी: मजूरी (मजदूरी), रंग: रग, नंग: नग, मंद: मद आदि

दृष्टांत: (1) एक बिंदु आगे-पीछे, न्यूनाधिक हो गया, तो दो ब्राह्मण परस्पर झगडे पर उतर गए जिसकी कथा इस प्रकार है-

बदरीनाथ और गंधेजीनाथ की कथा :- बनारस में गंगा के तट पर एक बडी विद्यापीठ थी उसमें बदरीनाथ एवं गंधेजीनाथ नामक दो महान पंडित रहते थे। एक बार दोनों पंडित ऋषिकेश की यात्रा करने निकलें, चलते चलते वे एक दिन ऋषिकेश पहुँच गए और वहाँ की एक धर्मशाला में उतर गए। नहा धोकर पूजा पाठ करके भोजनशाला में भोजन किया, रात्रि में छत पर जाकर सो गए। सोते-सोते बदरीनाथ ने अपने पेट पर हाथ फेरते हुए गंधेजीनाथ को कहा अरे पंडितजी ! आप की बुआ ने आपका नाम तो सुंदर रखा है, फिर भी मेरी इच्छा है कि आपके नाम पर जो बिंदु लगा हुआ है वह निकल जाए तो आपका नाम सुंदर ही नहीं बल्कि अति सुंदर बन जाए, आप गंधेजीनाथ में गधेजीनाथ बन जाओगे।

बच्चों ! आप समझ गए न ? गंधेजी के मस्तक से बिंदु हट जाए तो क्या स्थिति होती है ? परंतु गंधेजी महाराज तो तनिक भी आकुल नहीं हुए। हँसते-हँसते सब सुन लिया। फिर बदरीनाथ ने पुन: पूछा अरे गंधेजीनाथ ! क्यों हमारी बात पसंद नहीं आई क्या ? दाढी पर हाथ फेरते हुए गंधेजी बोलें, नहीं-नहीं जी ! आपकी बात तो बहुत ही सुंदर है, लेकिन मैं सोच रहा हूँ कि मेरे नाम पर से बिंदु को हटाकर रखना कहाँ पर ? अगर उसे आपके नाम पर रख दे, तो बात बन जाए। आपका नाम सारे विश्व में विख्यात हो जाए। आप बदरीनाथ मिटकर बंदरीनाथ बन जाओगे। बदरीनाथ तो यह सुनते ही आग बबूला हो गए और जोर शोर से बोलने लगे। तब गंधेजीनाथ ने कहा कि हमारा बिंदु हमारे नाम पर ही रहने दीजिये, मैं गंधेजीनाथ और आप बदरीनाथ .. बस...?

बच्चों ! देखा एक बिंदु के फेरफार की बात मात्र से कैसी धमा चौकडी मच गई। अत: आप जब सूत्र कंठस्थ करें तब विशेष ध्यान रखें। जहाँ बिंदु न हो, वहाँ बोलें नहीं, और जहाँ हो वहाँ बोलना न चूकें।

(2) इसी प्रकार बिंदु की भूल से कुणाल राजकुमार को आँखे फोडनी पडी थी, जिसकी कथा भी आगे दी जा रही है-

रज जैसी भूल ! गज जैसी सजा !

महाबुद्धिशाली चाणक्य का नाम तो आप सभी ने सुना ही होगा। वे जैन मंत्री थे। उन्होंने बडे परिश्रम से नंद वंश का नाश करके मौर्य वंश की स्थापना की थी। उस मौर्यवंश के प्रथम सम्राट के रुप में चंद्रगुप्त का राज्यभिषेक करने में तथा उनके साम्राज्य को विस्तृत करने में मंत्रीश्वर चाणक्य का बहुत बडा योगदान था।

पाटलीपुत्र मौर्यवंश की राजधानी थी। चंद्रगुप्त के बाद बिंदुसार नामक सम्राट हुआ। तत्पश्चात् अशोक नामक सम्राट हुआ। सम्राट अशोक के पश्चात् राजसिंहासन का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कुणाल

ही था, परंतु वह छोटा था, तभी उसकी माता यमलोक की मेहमान बन चुकी थी, अत: उसकी सौतेली माता की ओर से कुणाल के जीवन के लिये बडा भय था।

सम्राट अशोक की रानियों की आँखों में यह कुणाल काँटे की तरह चुभता था, क्योंकि राजगद्दी का अधिकारी वह था। अत: अन्य रानियाँ अपने पुत्र के मोह में कुणाल रुपी काँटा निकाल फेंकने के षड्यंत्र में व्यस्त रहती थी। अत: उसके जीवन की रक्षा हेतु उसके पिता अशोक सम्राट ने कुणाल को उज्ञयिनी (उज्जेन) नामक शहर में भेजा था। वहाँ उसकी सुरक्षा और पढाई-लिखाई की सारी व्यवस्था सम्हाल लें ऐसे कुछ अधिकारियों को नियुक्त कर रखा था। ऐसा करने का राजा का आशय यह था कि मातृविहीन कुणाल सुरक्षित रह सके, पढ लिख कर अच्छी तरह से तैयार हो सके और उसके कानों में माता की मृत्यु की बात भी टकराए नहीं।

अधिकारियों की देखरेख में उज्जैन में बसता हुआ कुणाल लगभग आठ वर्ष का होने आया तब उसके पिता अशोक को विचार आया कि अब कुणाल को पढाना चाहिये, क्योंकि यह राजगद्दी का उत्तराधिकारी है। अत: राजा ने उस समय प्रचलित प्राकृत भाषा में उन अधिकारियों पर एक पत्र लिखा था कि कुमारो अधीयउ (कुमार अब पढे) इस प्रकार पत्र लिखकर एक ओर रखा और स्वयं भोजनादि में व्यस्त हो गए। इतने में दुर्भाग्य योग से कुणाल के प्रति तीव्र ईर्ष्या रखने वाली तिष्यगुप्ता नामक सौतेली माता वहाँ आ गई। उसके हाथ में अशोक द्वारा लिखित वह पत्र आ गया। उसे पढते ही रानी के मन में विचार विद्युत चमत्कृत हुई कि राजगद्दी का उत्तराधिकारी होने से यह कुणाल ही मेरे पुत्र के लिये राजगद्दी प्राप्त करने में अवरोधक है। यह अवरोध दूर हो जाए तो ही मेरे पुत्र को राजगद्दी प्राप्त हो सकती है। मुझे जब यह अवसर प्राप्त हुआ है, तब मुझे ऐसा कुछ कर डालना चाहिए कि जिससे यह कुणाल राज्य संचालन के योग्य ही न रहे। तभी उसके मन में एक कुविचार छा गया कि यह कुणाल अँधा हो जाए तो कितना उत्तम रहे ! फिर क्या देर ? तिष्यगुप्ता ने उस पत्र में मात्र एक ही बिंदु लगाकर अपना कार्य सम्पादित कर लिया।

एक बिंदु चढा **अधीयउ** शब्द के मस्तक पर और उसने अर्थ का अनर्थ कर डाला ! बिंदु मस्तक पर चढते ही **अधीयउ** का **अंधीयउ** हो गया। कुमारो अधीयउ का अर्थ था - कुमार पढे, जबकि कुमारो अंधीयउ का अर्थ हो गया कुमार अँधा हो जाए। सम्राट अशोकश्री अब उस पत्र को कुछ भी परिवर्तन न करें इसकी चौकसी करती हुई तिष्यगुप्ता वहीं बैठी रही। स्वलिखित पत्र बंद करने से पूर्व पुन: एक बार पढ लेना चाहिए, परंतु सम्राट अनेक कार्यों में व्यस्त होने से उसने वह पत्र बिना पढे ही बंद कर दिया। सील करके ऊपर राज्य की मुहर-छाप लगाकर उज्जैन रवाना भी कर दिया। उज्जैन में नियुक्त उसके अधिकारियों के हाथ में जब वह पत्र आया, तब उसे पढकर अधिकारी गण तो अति उदास बन गए।

राजपुत्र कुणाल वय में छोटा था परंतु विनय-विवेक में अद्वितीय था। पिताजी का पत्र आने की बात सुनकर उसको संदेश जानने की उत्कंठा जागृत हुई। अत: उसने आभार एवं अहोभाव युक्त वाणी में अधिकारियों से कहा, मेरा आज का दिन धन्य है ! आज मेरे अहोभाग्य है कि पिताजी का मुझ पर पत्र आया है, बोलिए, पिताजी का क्या संदेश है ? पिताजी का मेरे लिये क्या आदेश है? पिताजी का आदेश न जानूँ तब तक मैं चैन से नहीं बैठ सकूँगा।

अधिकारी वर्ग के हृदय शोकमग्न थे। मुखाकृति पर उदासी का साम्राज्य था, वे विचारमग्न थे कि पिता जैसे पिता ने अपने प्रिय पुत्र के लिये ऐसी आज्ञा क्यों की होगी ? अपना पुत्र अँधा बने ऐसा तो कोई भी पिता नहीं चाहेगा। न कहा जा सके और न सहन हो सके ऐसी स्थिति थी।

अधिकारियों ने पुत्र की बात दबा देने के अनेक प्रयत्न किये, परंतु कुणाल की बालहठ और राजहठ के आगे अन्तत: उन्हें झुकना पडा। अश्रुभरी आँखों और गद्गद् कंठ से उन्होंने कुणाल को पत्र बताया।

कुणाल ने कहा, ओह ! इसमें कौन-सी बडी बात है। मैं मौर्यवंश में उत्पन्न सपूत हूँ, अत : मेरे मन मेरी आँखों की तुलना में मेरे पिताजी की आज्ञा का महत्त्व अत्यधिक है। पिताजी की आज्ञा के खातिर मैं स्वयं ही अँधत्व स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ, अत: आपको घबराने की आवश्यकता नहीं है।

सभी के हृदय द्रवित कर दे ऐसा वह पल आ पहुँचा और राजकुमार कुणाल ने रत्न जैसी अपनी दोनों आँखों में धधकती हुई लोहे की सलाखें ठूँस कर आँखे फोड दी व अंधत्व को स्वीकार कर लिया।

बच्चों ! देखा न ! एक बिंदु ने राजकुमार के जीवन के साथ कैसी क्रूर खिलवाड कर डाली ? कुणाल की यह कथा-शब्द में एक बिंदु की वृद्धि भी अर्थ का कैसा अनर्थ कर डालती है- इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है, परंतु उसके साथ ही पितृभक्ति का पाठ, आज्ञांकितता का आदर्श और मौर्यवंश की महानता का भी परिचय दे जाती है। इसी कुणाल के पुत्र **संप्रति राजा** थे जिन्हें जन्म लेते ही राज्य मिला था।

सूत्रों में पाठ बढाकर न बोलें:– सूत्र जितना लिखा हुआ हो, उतना ही बोलें। दो बार (डबल) भी न बोलें एवं अधिकस्य अधिकम् फलम् मानकर कायोत्सर्ग करते समय नवकार या लोगस्स अधिक न गिनें।

जिस प्रकार डॉक्टर की दवा का डोझ जितना लेने का निर्देश हो उतना ही लिया जाता है, अधिक या कम नहीं ले सकते, जैसे पापड या रोटी अधिक नही सेके जाते, यदि अधिक सिकने दें, तो उसका क्या फल निकलता है, इस बात से आप परिचित है। इसी प्रकार सूत्रों के पठन–पाठन में शब्द या मात्रा आदि अधिक न बोलें।

कुछ लोग नवकार मंत्र को सूत्र रूप में बोलते वक्त **नमो सिद्धाणं** पद में सव्व शब्द जोडकर **नमो सव्व सिद्धाणं** बोलते है, वह सव्व शब्द अधिक नहीं बोलना चाहिये – ऐसा बोलने से महादोष लगता है। परन्तु गीत रूप में या काव्य रूप में बोल सकते है।

दृष्टांत: वृद्धि करने पर एक लौकिक कथा निम्न प्रकार से है:– सूत्र में हो उससे अधिक अक्षर बोलने से कैसा अनर्थ होता है–यह समझने के लिये वह लौकिक कथा जानने योग्य है। यह कथा कदाचित् काल्पनिक भी हो सकती है, परंतु हमें जो समझना है, उसे समझने में उपयोगी है:

बंदर और बंदरी की चमत्कारिक कथा

एक था सरोवर। उसका जल चमत्कारी होने से कामिक तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध था। इस सरोवर कि तट पर वंजुल नाम एक वृक्ष था। इस वृक्ष पर चढकर यदि कोई पशु–पक्षी सरोवर में गिरते तो वे उसमें गिरते ही मानव बन जाते थे। ऐसी इस वृक्ष और सरोवर में विशेषता थी। इसका एक प्रतिकूल प्रभाव भी था कि मनुष्य में से देव बना हुआ व्यक्ति यदि दूसरी बार सरोवर में गिर पडता था, तो वह पुन: मनुष्य बन जाता था और पशु–पक्षी में से मनुष्य बना हुआ यदि दूसरी बार सरोवर में गिरने का लोभ करता था, तो वह मनुष्य पुन: पशु–पक्षी की ही काया प्राप्त कर लेता था। तीसरी बार गिर पडने वाले के लिये इसका कुछ भी प्रभाव न था।

ऐसे चमत्कारी इस सरोवर के किनारे पर एक बार एक पति–पत्नी आए और देव बनने की इच्छा से वे उस वृक्ष के ऊपर चढे और सरोवर में कूद पडे। दूसरी क्षण वे देव–देवी बनकर बाहर आए। उनकी देदीप्यमान काया में से चारों ओर प्रकाश फैलने लगा।

निकटवर्ती वृक्ष पर बैठे हुए बंदर–बंदरी ने यह दृश्य देखा, अत: उनके मन में भी सरोवर में गिरकर नवीन अवतार प्राप्त करने का लोभ पैदा हुआ। देखते ही देखते छलाँग मारकर वंजुल के वृक्ष पर

पहुँच गए और दूसरी एक छलाँग लगााकर सरोवर में पडे।

विद्युत वेग से बंदर और बंदरी मनोहर मानव देह प्राप्त कर ऊपर उठ आए। बंदर को नर का और बंदरी को नारी का देह मिला। दोनों ही अपार हर्षित थे।

कहावत है कि लाभ से लोभ बढता है। पशु देव में से मानव देह का लाभ होते ही उस वानर पुरुष का लोभ बढा। अब उसे मानव में से देव बनने की इच्छा हुई, अत: उसने अपनी पत्नी को कहा चल ! अभी एक बार और सरोवर में कूद पडे और मानव में से देव बन जाएं। पति की बात सुनकर पत्नी ने कहा: लोभ पाप का बाप है, लोभ की सीमा नहीं होती । लोभ से मानव का सर्वनाश हो जाता है। अत: हम पशु में से मानव बने यही बहुत है। अब अधिक लोभ करने से बचो। अधिक लोभ में फँसे तो यह मानव देह जो प्राप्त हुआ है उसे भी खो देंगे।

परंतु सयानी पत्नी की यह हित शिक्षा लोभांध पति ने अनसुनी कर दी। लोभ ही लोभ में उसने तो वृक्ष पर से पुन: सरोवर में छलाँग मार दी। पत्नी देखती ही रही और उसका पति पुन: बंदर बनकर उछल कूद करने लगा। बंदर के पश्चाताप की अब सीमा न रही, परंतु अब पछताए होत क्या जब चिडिया चुग गई खेत ? **It is Useless to Cry Over Spilt Milk.**

बंदरी – स्त्री का भाग्य प्रबल था। वह मानव देह खो बैठे अपने पति की दुर्दशा पर आँसू बहा रही थी। इतने में ही एक राजा वहाँ आ पहुँचा। वह उस स्त्री के रूप में मुग्ध हो गया। उसने दयार्द्र हृदय से उसके आँसू पौंछे। स्नेहपूर्वक उसे अपने साथ ले जाकर अपनी पट्टरानी बना दी।

कुछ दिनों के पश्चात् उस जंगल में एक मदारी आया। उसे वह लोभी बंदर बहुत ही पसंद आ गया। मदारियों को तो बंदर पकडना भी आता है और उनसे क्रीडा–खेल करवाना भी आता है। मदारी ने बंदर को पकड लिया और भाँति–भाँति के खेल भी सिखा दिये। मदारी के बंदर की तरह वह तरह तरह के खेल खेलकर लोगों का मन हरने लगा। भाग्य योग से यह मदारी एक दिन उसी राजा की सभा में जा पहुँचा। बंदरी में से मानव बनी हुई रानी की दृष्टि उस बंदर पर पडी और उसने उसे अपने पति के रूप में पहचान लिया। बंदर की भी ऐसी ही स्थिति

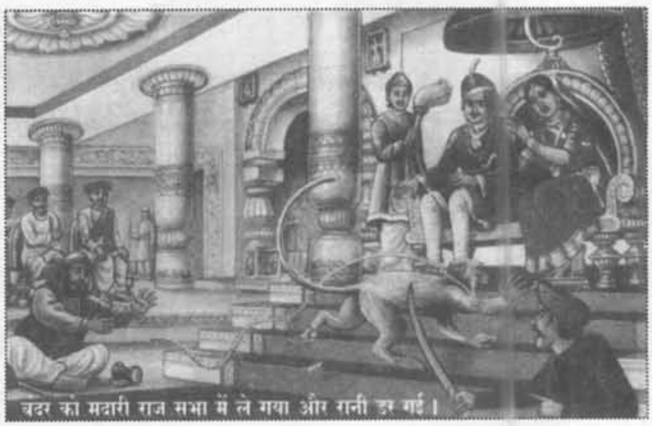

थी। उसने भी रानी को पहचाने लिया था। उसका मन उसके मिलन हेतु लालायित हो रहा था। अत: वह बार-बार रानी की ओर बढने लगा। यह देखकर रानी ने उसे सलाह देते हुए कहा- हे वानर ! अब मुझे पाने की मिथ्या आशा में क्यों दौड धूप कर रहा है? अब तेरा यह प्रयत्न सफल नहीं हो सकेगा। तुझे बाधा पहुँचाई है तेरी ही भूल ने। तुझे कष्ट दे रहा है तेरा स्वयं का ही लोभ। यदि तूने लोभांध बनकर सरोवर में पुन: कूद पडने की भूल न की होती तो ऐसी दुर्दशा कदापि न होती। अपनी भूल का फल अपने को ही भुगतना है। अब जैसा देश काल है, तदनुसार की बरत ले इसी में समझदारी है।

बालकों ! इस बंदर के दृष्टांत से आप अच्छी तरह समझ गये होंगे कि कीमती मनुष्य भव प्राप्त करने पर भी उसे खो देने के कारण उसे कितनी बडी हानि उठानी पडी। बस ! तो इसी प्रकार सूत्र-पाठ में अक्षर-काना-मात्रा, बिंदु आदि अधिक बोला जाए तो बडा भारी अनर्थ हो जाता है। अत: तनिक भी कमीबेशी न हो, इस प्रकार सावधानीपूर्वक सूत्र का पठन-पाठन करना चाहिए। **अधिकस्य अधिकम् फलम्** सूत्र का उपयोग यहाँ नहीं हो सकता।

चार अंग:- पाठशाला को चलाने के लिये उसके चार अंग है। जिस प्रकार गाडी के चार पहिये होते है, वे चारों ही पहिये अपना अपना कर्त्तव्य निभाते है तभी गाडी सुरक्षित रुप से अपना मार्ग काट कर इष्ट स्थान पर पहुँचा सकती है। उनमें से एक भी पहिया बिगड जाता है, तो गाडी ठीक ढंग से नहीं चल पाती, उसी प्रकार पाठशाला रुपी गाडी चलाने के लिये उसके चार पहियों रुप चार अंग बताए जा रहे हैं। वे हैं : 1. बच्चे-विद्यार्थी गण, 2. बच्चों के माता-पिता, 3. विद्या गुरुजन (शिक्षक वृंद), 4. पाठशाला के कार्यकर्ता गण

1. यदि बच्चे पाठशला में पढने न आएँ तो पाठशाला चल नहीं सकती।
2. बच्चों के माता-पिता अपनी संतानों को पाठशाला में पढने न भेजें तो पाठशाला नहीं चल सकती।
3. पाठशाला के शिक्षक पाठशाला में अध्यापन करवाने के लिये आए ही नहीं, अथावा यदा कदा ही आएँ, समय पर न आएँ तो पाठशाला नहीं चलती।
4. पाठशाला के कार्यकर्ता यदि पाठशाला के प्रति ध्यान न रखें, लापरवाही बरतें, विद्यार्थियों को उत्साहित कर पाये, ऐस आयोजन न करें तो पाठशाला नहीं चल सकती।

पाठशाला के आयोजन में एक और विशेष ध्यान रखने योग्य बात यह है कि विद्यार्थियों को अभक्ष्य ऐसे बिस्कुट-चॉकलेट, केडबरी आदि की प्रभावना नहीं करनी चाहिए।

रात्रि कालीन पाठशाला में खाने योग्य कैसी भी वस्तु की प्रभावना न की जाए, क्योंकि पाठशाला से छुट्टी होने पर बच्चे रास्ते में ही खाने लग जाते है जिससे रात्रि भोजन का दोष लगता है।

* गाथा कंठस्थ करने की पद्धति *

1. 3-4 अक्षर से अधिक अक्षर वाले शब्द एक साथ न बोलें।

2. गाथा लेने के पश्चात् एक बार पुन: वह गाथा शुद्ध रुप से देने वाले को सुनाएँ तथा स्वयं पाँच बार देखकर बोलें।

3. जितनी शक्ति हो उतना पक्का याद करने के पश्चात् ही दूसरा रटें। एक पंक्ति रटने के बाद दूसरी पंक्ति पक्की करें।

4. पुन: पहली+ दूसरी पंक्ति बोलें और तत्पश्चात् तीसरी पंक्ति पक्की हो जाने के बाद दूसरी + तीसरी पंक्ति बोलें, फिर चौथी पंक्ति पक्की करके प्रथम से चौथी पंक्ति तक एक साथ पुन: बोलें। इस प्रकार चार पंक्तियों की गाथा पक्की करें।

5. पिछले सूत्र या पिछली गाथाएँ विस्मृत हो गई हो तो उन्हें पक्की करके फिर नया सूत्र रटें, क्योंकि सूत्र पाठ शुद्ध और पक्का पढने से अनेक पाप कर्म नष्ट होते हैं, पुण्य बँधता है और अशुद्ध पढ़ने व पढा हुआ भूल जाने से दोष लगता है, अत: सूत्र शुद्ध व दृढ पढने का आग्रह रखें।

6. गुटखा-चाय आदि व्यसन मन की चंचलता बढाते है, अपनी स्मरणशक्ति और समझ शक्ति को घटाते है अत: इनका त्याग करें।

7. जैन धार्मिक सूत्र देवाधिष्ठित, मंत्रगर्भित और शुभ भाव युक्त है। अत: सूत्र शुद्ध बोलने से प्रबल पुण्य बंध होता है, पाप निर्बल बनता है, मोक्ष सुलभ बनता है। सूत्रों के अर्थ सीखकर उन पर मनन करने से अनेक पाप कर्मों का नाश होता है।

प्यारे बच्चों ! ध्यान रहे कि तनिक भी अशुद्ध गाथा न रटें, रटा हुआ न भूलें, सूत्रो का अर्थ किया जाए तो मोक्ष की प्राप्ति शीघ्र हो सकती हैं, अत: शुद्ध पढें।

पाठशाला के शिक्षकों के लिये ध्यान योग्य बातें:- पाठशाला के शिक्षक भी पढाने में विशेष ध्यान रखे कि सूत्र कंठस्थ करवाने के साथ उनके अर्थ भी समझाएँ। अमुक क्रियाओं का विधिज्ञान, स्तवन, स्तुति, स्तुतिओं के जोडे आदि भी कंठस्थ करवाएँ, वरना दो प्रतिक्रमण कंठस्थ हो जाने पर भी बालकों को चैत्यवंदन की विधि भी नहीं आती।

सूत्रों का पुनरावर्तन करवाते रहें।

रविवार को सामायिक और सप्ताह अथवा 15 दिनों में एक बार तो पाठशाला के सभी बच्चों को प्रतिक्रमण करवाने का आयोजन रखें, जिससे क्रिया में रुचि पैदा हो।

सम्यग्ज्ञान वो फूल है, वो फूल जिसको न लेना भूल है,
भूल में जो मशगूल है, उसका जीवन धूल है,
जो ज्ञान प्राप्ति में मशगूल है, उसका जीवन अमूल है,
जिसका ज्ञान अतुल है, उसके कर्म होते निर्मूल है।

✻ ज्ञान पूजन की विधि ✻

जिसे ज्ञान न चढता हो उसे और अन्य को भी प्रतिदिन धार्मिक पुस्तक अथवा शास्त्र-ग्रंथ की वासक्षेप से ज्ञान पूजा करनी चाहिए। ज्ञानपूजा दो प्रकार की होती है- द्रव्य से और भाव से।

द्रव्य से ज्ञान पूजा:- शास्त्र-ग्रंथ की फल-नैवेद्य-स्वर्ण मुद्रा, चाँदी का सिक्का, रुपया-पैसा रखकर वासक्षेप से पूजा करना द्रव्य ज्ञानपूजा कहलाती है। हमें ज्ञान पूजन करना है, धन पूजन नहीं करना हैं, अत: पोथी या पुस्तक पर अपने दाहिने हाथ से वासक्षेप रखें, परन्तु रुपये पैसों पर वासक्षेप न रखें। उस पर रखने से धन का पूजन हो जाता है। अत: पैसे आदि थाली में रखें। गुरु भगवंत का संयोग हो तो उनके पास जाकर ज्ञान पूजन करें, अन्यथा पाठशाला आदि में ही ज्ञान पूजन हो सकता है। यह द्रव्य से ज्ञान पूजा हुई।

भाव से ज्ञान पूजा:- दो हाथ जोडकर, मस्तक झुकाकर, नमो नाणस्स बोलकर ग्रंथ वाली पोथी या पुस्तक को नमस्कार करने से ज्ञान की भावपूजा होती है। ज्ञानपंचमी के दिना नाण (ज्ञान) के समक्ष प्रणाम, स्तुति, देववंदन, खमासमण, काउस्सग्ग, नवकारवाली आदि क्रियाएँ करें। वह भी ज्ञान की भाव पूजा है।

वासक्षेप डालना:- इस प्रकार ज्ञान की द्रव्य-भाव पूजा करके गुरु कृपा से अपना अज्ञान दूर हो और संसार रूपी सागर से पार उतरने के लिये गुरु महाराज के पास, वासक्षेप डलवाएँ। पाँच महाव्रत के धारक, आजीवन सामायिक वाले, जिनवाणी का श्रवण करवाने वाले गुरु म. अपने परम उपकारी है। अत: उनका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए। गुरू पूजन करने के लिये पैसों आदि का गुरू के अंग से स्पर्श न करें, परंतु उनके पाँव के पास रखकर उनके अंगुठे पर अपने दाहिने हाथ से वासक्षेप लेकर पूजन करें। पैसों पर वासक्षेप न रखें। गुरु भगवंत पर पूज्य भाव रखें। उनके पूजन से अपने चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय होता है, चारित्र उदय में आता है।

ज्ञानपूजन करती हुई छोटी सी बालिका...

गुरु के पास वासक्षेप डलवाती हुई बालिका...

पाठशाला से पढकर घर लौटने के बाद रात्रि में माता-पिता आदि अग्रजों (वडिलों) की सेवा करें। उनकी सेवा से हमें उनके आशीर्वाद प्राप्त होते है।

महात्मा मनु ने भी कहा है कि माता की भक्ति से इस लोक का सुख प्राप्त होता है, पिता की भक्ति से परलोक का सुख प्राप्त होता है और गुरू की भक्ति से ब्रह्मलोक का सुख मिलता है। जो इन तीन का आदर करता है, वह धर्म का आदर करता है, इससे विपरी जो इन तीन का अनादर करता है, उसकी सभी क्रियाएँ निष्फल जाती है।

5. नवपद

A. नमस्कार महामंत्र

प्र. सिद्ध भगवंत किसे कहते है ?

उ : चार घाती और चार अघाती कर्म – इस प्रकार कुल आठों कर्मों का जिन्होंने संपूर्ण नाश किया हो, राग–द्वेष, विषय–कषाय आदि दोषों से जो सदा मुक्त बन गए हो, जन्म–जीवन–मृत्यु रुपी जंजाल से जो मुक्त हो गए हो, जिन्हें अब किसी प्रकार के दुःख का सामना न करना पड़े, जिन्होंने अपनी आत्मा का शुद्ध स्वरुप प्रगट कर लिया हो, सिद्धशिला (मोक्ष) पर विराजमान होकर जो सदा आत्मरमणता में लीन हो, जिन्होंने वीतराग दशा और केवलज्ञान प्राप्त कर लिया हो उन्हें सिद्ध भगवंत कहते है।

सिद्ध भगवंत अनंत गुणों से युक्त होते है लेकिन उनके आठ गुण मुख्य रुप से प्रचलित है।

प्र : सिद्ध भगवंतों के आठ गुण कौन–कौन से ?

उ : आठ कर्मों का नाश करने पर उन्हें आठ गुण प्राप्त होते है

1. ज्ञानावरणीय कर्म के नाश से – अनंतज्ञान
2. दर्शनावरणीय कर्म के नाश से – अनंतदर्शन
3. वेदनीय कर्म के नाश से – अव्याबाध सुख
4. मोहनीय कर्म के नाश से – वीतरागता
5. आयुष्य कर्म के नाश से – अक्षयस्थिति
6. नामकर्म के नाश से – अरुपीत्व
7. गोत्रकर्म के नाश से – अगुरुलघु
8. अंतराय कर्म के नाश से – अनंतवीर्य

प्र : अरिहंत भगवान और सिद्ध भगवान में क्या भेद है ?

उ : 1. अरिहंत भगवान ने मात्र चार घाती कर्मों का ही नाश किया होता है जब कि सिद्ध भगवान ने आठों कर्मों का नाश किया होता है।

2. अरिहंत भगवान इस विश्व के जीवों को आत्मकल्याण का उपदेश देते हुए विचरण करते है जबकि सिद्ध भगवंत मोक्ष में बिराजमान होते है।

3. अरिहंत भगवान के 12 विशिष्ट गुण होते है जब कि सिद्ध भगवान के 8 विशिष्ठ गुण होते है।

4. सिद्ध भगवान बिना शरीर के होते है।

5. अरिहंत भगवान आयुष्य पूर्ण करके सिद्ध बनते है लेकिन सभी सिद्ध पूर्व में अरिहंत हो – ऐसा जरुरी नहीं, वे सामान्य केवलज्ञानी महात्मा भी हो सकते है।

6. अरिहंत भगवंतों में शासन की स्थापना करने की विशिष्ट पुण्याई होती है जबकि सिद्ध भगवंतों में पूर्व में ऐसा पुण्य हो यह जरुरी नहीं।

7. विश्व के प्रत्येक जीवों के प्रति अपार वात्सल्य होने से अरिहंत भगवंतों का वर्ण सफेद होता है जबकि आठों कर्मों को जलाकर भस्म करने से सिद्ध भगवंतों का वर्ण लाल होता है।

प्र : अरिहंत भगवंत बाद में सिद्ध बनते है तो सिद्ध भगवंत बाद में क्या बनते है ?

उ : सिद्ध भगवंत सदा के लिए मोक्ष में ही रहते है। सिद्ध भगवंतों के कर्म नहीं होते इसलिए उन्हें जन्म लेना नहीं पडता और शरीर धारण नहीं करना पडता है। वे हमेशा सुख में रहते है। हमें भी सिद्ध भगवान बनना है। इसलिए हमें सभी सिद्ध भगवंतों को नमो सिद्धाणं कहकर नमस्कार करना चाहिए।

प्र : अरिहंत भगवान और सिद्ध भगवान को समझने के लिए कोई दृष्टांत है ?

उ : हाँ ! शास्त्र में सुंदर दृष्टांत से अरिहंत और सिद्ध भगवंत का परिचय दिया गया है।

एक विशाल समुद्र छलक रहा है। अंदर लहरें और तरंगें उछल रही है। इस समुद्र को पार करने के लिए कई मुसाफिर स्टीमर जहाज में बैठे है। स्टीमर का कप्तान (चालक) रात के समय स्टीमर चलाता है उसकी नजर सतत ध्रुव तारे पर जा रही है। क्योंकि ध्रुव तारें को देखते-देखते कप्तान सही दिशा में स्टीमर को आगे बढ़ाता है और यात्रियों को जल्द ही उनके गंतव्य तक पहुँचाता है ।

यह संसार एक विशाल समुद्र है। और भव्य जीव है मुसाफिर। उन्हें पहुँचना है मोक्षनगर में। संसार समुद्र पार कराकर मोक्ष नगर में पहुँचाने वाला जहाज़ जिनशासन है। जिनशासन रुपी जहाज में बैठकर संसार समुद्र पार करके हमें मोक्षनगर में पहुँचना है। लेकिन जहाज़ को चलाने के लिए कप्तान तो चाहिए ना ? और वो कप्तान है अरिहंत भगवंत। और अरिहंत भगवंत रुपी कप्तान को दिशा दिखाने वाले ध्रुव के तारे है सिद्ध भगवंत।

इस तरह अरिहंत भगवंत शासन की स्थापना करके हमें मोक्ष की ओर ले जाते है। वहीं सिद्ध भगवंत हमें निरंतर मोक्ष रुपी स्थान की दिशा बताते रहते है। मानो कि हमें कहते है कि हे भव्य जीवों ! तुम्हें इस मोक्ष तक आना है।

प्र : सिद्ध भगवंत कौन बन सकते है ?

उ : मनुष्य गति मे आया हुआ मानव यदि अपनी साधना द्वारा राग-द्वेष आदि अंतर शत्रुंओं का नाश कर दें, आठों-आठ कर्मों को भस्म कर दें तो वह उसी भव में मोक्ष में जा सकता है और सिद्ध भगवंत बन सकता है। मनुष्य गति के अलावा बाकी की तीन गतियों में से सीधे मोक्ष नहीं जाया जा सकता है।

कई आत्मा पहले चार घातीकर्मों का क्षय करके केवलज्ञानी बनती है। वे भव्यजीवों को उपदेश देते हुए इस लोक में विचरण करते है। उस वक्त वे जिन या केवली के रुप में पहचाने जाते है। बाद में बाकी के चार अघाती कर्मों का भी क्षय करके मोक्ष में जाते है। उसके बाद वे सिद्ध भगवंत कहलाते है।

गजसुकुमालमुनि, खंधकमुनि आदि की आत्माओं ने चार घाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर तुरंत ही आयुष्य पूर्ण करके बाकी के चार अघाती कर्म भी क्षय करके तुरंत मोक्ष में गये थे। उन्हें अंतकृत केवली कहते है।

प्र : सिद्ध भगवंतों को मोक्ष में सुख मिलता है या नहीं ?

उ : मोक्ष में तो हमेशा के लिए सुख–सुख और सुख ही होता है। वह सुख हमारे संसार सुख जैसा नहीं होता बल्कि उससे अनंत गुणा अच्छा सुख होता है। संसार के सुख को सुख कैसे कहा जा सकता है ? संसार के जो भी सुख होते है वे विनाशी सुख होते है। वे स्थायी नहीं होते, और तो और, दुःखों को लाने वाले होते है। वे सामग्री पर निर्भर होते है। जो सुख सदा के लिए न टिकने वाले हो और एक दिन जिसका विनाश होने वाला हो, ऐसे सुख प्राप्त करने में क्यों हम इतने पाप करें ?

वास्तव में तो कायम के लिए टिकने वाला, दुःखों की परंपरा को अटकाने वाला, स्वाधीन और पूर्ण सुख प्राप्त करने में ही बुद्धिमता है, और ऐसा सुख तो मात्र मोक्ष में ही है। अतः हमें भी शाश्वत, स्वाधीन और संपूर्ण सुख प्राप्त करने के लिए सिद्ध भगवंत बनने का पुरुषार्थ करना चाहिए। सिद्ध भगवंत स्वयं अविनाशी है और उनका सुख भी अविनाशी है। इस तरह सिद्ध भगवंतों का विशिष्ट गुण है – **अविनाशी**

प्र : हमारे जिनालयों में अरिहंत भगवंत होते है या सिद्ध भगवंत ?

उ : हमारे जिनालयों में अरिहंत और सिद्ध दोनों की ही प्रतिमाएँ हो सकती है। अष्ट प्रातिहार्य युक्त महावीर स्वामी भगवान की प्रतिमा हो तो वह अरिहंत भगवान कहलाते है। अष्ट प्रातिहार्य के बिना सिद्धावस्था को बताने वाली प्रतिमा मोक्ष में पहुँच चुके महावीर स्वामी भगवान को दर्शाती है।

हमारे मंदिर के शिखर पर अरिहंत और सिद्ध भगवंत को सूचित करने वाली लाल–सफेद ध्वजा होती है। मंदिर में यदि मूलनायक भगवान अरिहंत हो तो बीच में सफेद और आजु बाजु लाल रंग की पट्टी होती है। और यदि मंदिर में मूलनायक सिद्ध अवस्था में हो तो ध्वजा की बीच की पट्टी लाल रंग की और आजु–बाजु सफेद रंग की होती है। अरिहंत और सिद्ध के अलावा और कोई परमात्मा नहीं होते। इसलिए मंदिरों पर भी लाल और सफेद रंग के अलावा अन्य रंगों की ध्वजा नहीं होती।

प्र : अरिहंत और सिद्ध के अलावा यदि और कोई परमात्मा नहीं है तो आचार्य भगवंतों को भी नमस्कार क्यों करते है ?

उ : जो स्वयं अरिहंत परमात्मा के उपदेश के अनुसार पालन करते है और दूसरों से करवाते है इसलिए आचार्य भगवंतों को नमस्कार किया जाता है। वे भगवान तो नहीं है लेकिन भगवान बनने के लिए सतत साधना रत है। भगवान की अनुपस्थिति में वे जिनशासन का संचालन करते है। परमात्मा के उपदेश को विश्व के जीवों को बताकर उन्हें सच्चे मार्ग पर ले जाते है। अनेक जीवों को इस संसार के प्रति वैरागी बनाकर साधूजीवन तक पहुँचाते है। अनेक शास्त्रों का अभ्यास कर वे प्रकांड पंडित बनते है। वे 36 गुणों के स्वामी होते है।

अरिहंत परमात्मा राजा जैसे है तो आचार्य भगवंत राजपुत्र के समान होते है। राजा की अनुपस्थिति में राजपुत्र, राजा के समान बनता है। उसी तरह तीर्थंकरों की अनुपस्थिति में आचार्य भगवंत को तीर्थंकर के समान गिना गया है।

जिनशासन की सेवा करने के साथ-साथ अवसर पर अनेक बाह्य आक्रमणों से शासन की रक्षा करने की जिम्मेदारी आचार्य भगवंतों को निभानी होती है।

आचार्य भगवंत सूर्य के समान तेजस्वी होने के कारण उनका वर्ण पीला (केसरियो) होता है। उनके 36 गुणो का वर्णन पंचिंदिय सूत्र में मिलता है।

प्र : आचार्य भगवंतों का विशिष्ट गुण कौन सा है ?

उ : आचार्य भगवंतों का विशिष्ट गुण है – **आचार**

वे आचार के भण्डार होते है। स्वयं उच्च आचार का पालन करते है और अनेकों को उच्च आचार पालन की प्रेरण देते है।

प्र : उपाध्याय भगवंतों को नमस्कार क्यों करना चाहिए ?

उ : उपाध्याय भगवंत भी संसार के प्रति वैरागी बनकर दीक्षा लेने वाले साधु होते है। लेकिन उनमें यह एक विशिष्ट कला होती है कि जिनशासन के शास्त्रों का स्वयं अध्ययन कर अन्य साधुओं को भी सुंदर तरीके से उन शास्त्रों का अध्ययन कराते है। स्वयं शास्त्र अभ्यास करना और दूसरों को अभ्यास कराना – यह उनका मुख्य कार्य होता है। आचार्य भगवंत उपदेश देकर जिन्हें वैरागी बनाकर दीक्षा देते है उन्हें साधुजीवन में स्थिर बनाने की जिम्मेदारी उपाध्याय भगवंतों की होती है। उपाध्याय भगवंत अन्य साधुओं को सतत् शास्त्र अभ्यास कराते है, उन्हें साधुजीवन का सुंदर प्रशिक्षण देते है, साधुता में स्थिर करने और उन्हें सतत् उल्लासित रखने का कार्य उपाध्याय भगवंत करते है।

आचार्य भगवंत यदि पिता समान है तो उपाध्याय भगवंत माता समान। वे माँ के समान शिष्यों की देखभाल करते है। कभी प्यार से तो कभी फटकार से, कभी कोमलता से तो कभी सख्ती से वे साधु भगवंतों को संयम में स्थिर बनाए रखते है।

छोटा बालक यदि भूल करे तो माँ उसे समझाती है, मनाती है। नहीं मानता तो डांटती है और फिर भी न माने तो मारती भी है लेकिन हर समय बालक के प्रति माँ के हृदय में अपार प्रेम और वात्सल्य छलकता रहता है। माँ हमेशा बालक की भलाई चाहती है। उसी तरह उपाध्याय भगवंत भी सतत साधुओं का हित चाहते है

उपाध्याय भगवंत हमेशा साधुओं के शरीर की, मन की और विशेषकर उनकी आत्मा के हित की चिंता करते है। कभी किसी साधु से कोई भूल हो जाएं तो एक माँ की तरह उपाध्याय भगवंत उसे समझाते है, मनाते है। नहीं माने तो डांटते है और फिर भी नहीं माने तो उपाध्याय भगवंतों को चांटा लगाने का भी अधिकार है। लेकिन हर समय साधु के प्रति उपाध्याय भगवंत के हृदय में अपार स्नेह और वात्सल्य

होता है। उपाध्याय भगवंत के मन में साधु के कल्याण की ही भावना होती है। इसलिए उपाध्याय भगवंतों को साधुओं की सच्ची माता (भाव माता) की उपमा दी गई है।

गर्मी के दिनों में दोपहर की चिलचिलाती धूप में प्यासा, थका हुआ और गर्मी से त्रस्त व्यक्ति जिस तरह वट वृक्ष की शीतल छाया मिलने से राहत का अनुभव करता है उसी तरह दोषों से त्रस्त साधु भगवंत उपाध्याय भगवंत रुपी वट वृक्ष की छाया प्राप्त कर राहत का अनुभव करते है। इसलिए उनका वर्ण भी वट वृक्ष की तरह हरा होता है।

प्रश्न: उपाध्याय भगवंत के गुण कितने होते है ? किस प्रकार से ?

उत्तर: उपाध्याय भगवंतों के 25 गुण प्रचलित है।गणधर भगवंत द्वारा रचित द्वादशांगी में से 11 अंग विद्यमान है। तथा बारह अंग से संबंधित 12 उपांग भी वर्तमान में विद्यमान है। 11 अंग + 12 उपांग = 23 शास्त्र का वे अध्ययन करते है और कराते है इन 23 गुणों में वे चरणसित्तरी (24) और करणसित्तरी (25) का पालन करते है। इस तरह उपाध्याय भगवंत के 25 गुण होते है।

प्रश्न: उपाध्याय भगवंतों का विशिष्ट गुण कौन सा है ?

उत्तर: उपाध्याय भगवंत स्वयं उत्तम प्रकार के विनय गुण के भंडार होते है। और साधुओं को भी विनय गुण से युक्त बनाते है। इसलिए उपाध्याय भगवंत का विशिष्ट गुण है **विनय**।

प्रश्न: साधु भगवंतों को नमस्कार क्यों करना चाहिए ?

उत्तर: साधु भगवंत संसार के सभी सुखों का त्याग करके संयम स्वीकारते है। माता-पिता स्वजनों के प्रति मोह का भी वे त्याग करते है। वे कभी कंचन या कामिनी का स्पर्श नहीं करते।

नंगे पैर चलकर वे गाँव गाँव विहार करते है। हर छ: महीने में बालों का लोच कराते है। आत्मा पर रहे हुए कर्मों और दोषों का निवारण करने के लिए परमात्मा की आज्ञानुसार वे सतत् साधना में लीन रहते है। उत्तमप्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन करते है। ऐसे त्यागी, वैरागी, संयमी, साधु भगवंत को नमस्कार करने की इच्छा किसे नहीं होगी ?

जो सहन करे वह साधु। साधु भगवंत पृथ्वी के समान सहन करते है। कष्ट, तकलीफें, प्रतिकूलताओं को वे हँसते हँसते सहन करते है। अरे ! वे तो सामने से कष्टों को आमंत्रित करते है।

समग्रजीवन के दौरान वे अरिहंत परमात्मा की आज्ञा अपने मस्तक पर धारण करते है। सभी पापस्थानों से दूर रहते है। भूल से भी कोई पाप हो जाएं तो सच्चे हृदय से उसका प्रायश्चित लेते है। वे मोक्ष पाने की तीव्र इच्छा वाले होते है।

इस विश्व में ऊँचे से ऊँचा सदाचार याने पाँच महाव्रतों का वे सतत् पालन करते है।

जो सहायता करे वह साधु। अपने साथ में रहे हुए सभी साधुओं की सहायता के लिए वे तत्पर रहते

है। स्वयं तो सुंदर संयम का पालन करते है और अपने साथी साधुओं को भी सुंदर संयम का पालन कराने में सहायक बनते है। इसलिए साधुभगवंतों का विशिष्ट गुण है – **सहायकता**।

ऐसे श्रेष्ठ गुणवाले साधु भगवंतों को नमस्कार करने से उनके जैसे गुण हमारे जीवन में प्रगट होते है। इसलिए उन्हें भावपूर्वक नमस्कार करना चाहिए।

प्रश्न: साधु भगवंतों का वर्ण कौन सा ?

उत्तर: साधु भगवंत साधना करते हुए, सहन करते हुए, सहायता करते हुए आत्मा पर लगे हुए काले कर्मों को दूर करते है। अत: उनका वर्ण काला होता है।

प्रश्न: साधु भगवंतों के कितने गुण प्रचलित है ?

उत्तर: साधु भगवंतों के 27 गुण प्रचलित है। वे इस प्रकार है:

1 से 5	=	पाँच महाव्रत
6	=	रात्री भोजन विरमण (त्याग) व्रत
7 से 12	=	पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय की रक्षा करना
13 से 17	=	पाँचों इन्द्रियों को नियंत्रण में रखना
18	=	लोभ निग्रह
19	=	क्षमा
20	=	भाव शुद्धि
21	=	पडिलेहण, आदि क्रियाओं में शुद्धि
22	=	संयम योगों का पालन
23 से 25	=	अशुभ मन, वचन और काया का निरोध
26	=	ठंडी, गर्मी आदि परिषह (कष्टों) को सहन करना
27	=	मरणांत उपसर्ग में समाधि रखना।

प्रश्न: पांच महाव्रत कौन कौन से है ?

उत्तर: 1. जगत के किसी भी जीव को मारना नहीं, दु:खी नहीं करना। किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना, यहां तक कि ऐसा करने का विचार तक नहीं करना। दूसरों के पास ऐसा कुछ भी नहीं कराना और जो ऐसा करते है उन्हें मन से अच्छा नहीं मानना। इस महाव्रत को शास्त्रीय भाषा में सर्वथा प्राणातिपात विरमण महाव्रत कहते है।

2. कभी भी झूठ नहीं बोलना। किसी दूसरों के पास झूठ बुलवाना भी नहीं। झूठ बोलने वालों को मन से भी अच्छा नहीं मानना। इसका नाम असत्य त्याग। इस महाव्रत को शास्त्रीय भाषा में सर्वथा मृषावाद विरमण व्रत कहते है।

3. कभी चोरी नही करना। दूसरों के पास चोरी करानी नहीं जो चोरी करते हो उन्हें मन से अच्छा मानना नहीं। इसका नाम चोरी त्याग। इस महाव्रत को शास्त्रीय भाषा में सर्वथा अदत्तादान विरमण महाव्रत कहते है।

4. कोमल, सुंदर, मुलायम वस्तुओं का स्पर्श करना नहीं, स्वादिष्ट भोजन करना नहीं, सुगंधी फूलों को सूंघना नहीं, सुंदर वस्तुओं को देखना नहीं, मधुर संगीत सुनना नहीं, ऐसे अनेक वासनाओं को छोड देना। दूसरों के पास ऐसा कुछ कराना नहीं और जो ऐसा कर रहे है, उन्हें मन से अच्छा मानना नहीं। इसका नाम ब्रह्मचर्य। इस महाव्रत को शास्त्रीय भाषा में सर्वथा मैथुन विरमण व्रत कहते है।

5. पैसा, संपत्ति, मकान, जमीन, परिवार, माता-पिता सभी को छोड देना। दूसरों के पास भी यह सब कुछ रखवाना नहीं और जमीन, पैसा, मकान आदि का परिग्रह रखने वालों को मन से अच्छा मानना नही। इसका नाम परिग्रह त्याग। इस महाव्रत को शास्त्रीय भाषा में सर्वथा परिग्रह विरमण महाव्रत कहते है।

प्रश्न: नवकार के पाँचवे पद में लोए शब्द की क्या जरुरत है ?

उत्तर: मनुष्यों की उत्पत्ति मात्र ढाई द्वीप में ही होने से साधुओं का निवास स्थान, ढाई द्वीप जितने लोक में ही है। इसे सूचित करने के लिए लोए शब्द का प्रयोग किया गया है। इस से इसका अर्थ होता है **ढाई द्वीप में रहे हुए सभी साधु भगवंतों को नमस्कार हो।**

प्रश्न: सव्व पद का क्या अर्थ होता है ?

उत्तर: 1. लोए शब्द से ढाई द्वीप समझना चाहिए। ढाई द्वीप 900 योजन ऊंचा, अधोलोक की अपेक्षा से 1000 योजन गहरा और 45 लाख योजन तीर्च्छी दिशा में फैला हुआ है। इसलिए यदि सव्व शब्द न हो तो लोए शब्द से मात्र अढाई द्वीप में रहे हुए साधुओं को ही नमस्कार होता है। लेकिन ढाई द्वीप के बहार मेरुपर्वत के पांडुक वन में या नंदीश्वर आदि द्वीप में जो लब्धिधारी साधु गए हो उन्हें नमस्कार नहीं होता है। वे भी साधु ही है। इसलिए उन्हें भी नमस्कार करने के लिए सव्व पद का प्रयोग किया गया है। इस तरह इसका अर्थ - **लोक में जहां जहां जो जो साधु हो उन सभी को नमस्कार हो**

2. जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया है लेकिन अरिहंत, सिद्ध, आचार्य या उपाध्याय नहीं है, ऐसे केवली भगवंतों को किसी पद में नमस्कार नहीं होता। उन्हें भी नमस्कार करने के लिए सव्व पद का प्रयोग किया गया है। इस तरह केवली, जिनकल्पी, परिहारविशुद्धि कल्पिक, प्रत्येक बुद्ध आदि सभी प्रकार के साधुओं को नमस्कार होता है।

3. सव्व = सर्व = सर्वज्ञ भगवंत संबंधी। इस तरह लोक में रहे हुए सर्वज्ञ भगवंत संबंधी साधुओं को नमस्कार हो, ऐसा अर्थ होने से सभी सुगुरूओं को वंदन होता है। बाबा, संन्यासी, फकीर आदि को नमस्कार नहीं होता।

प्रश्न: अरिहंत भगवान ने सिर्फ चार कर्मों का नाश किया है। वे अभी संसार में है। मोक्ष में नहीं गए है। जबकि सिद्धभगवंतों ने आठों कर्मों का नाश कर लिया है। मोक्ष में जा चुके है। तो फिर पहले सिद्ध भगवंतों को नमस्कार किया जाना चाहिए और बाद में अरिहंत भगवंत को। लेकिन ऐसा क्यों नहीं करते ?

उत्तर: सिद्ध भगवंतों की पहचान हमें अरिहंतों के उपदेश से ही जानने को मिलती है। अरिहंत ही तीर्थ की स्थापना करते हैं। उपदेश देकर अनेक जीवों को मोक्ष तक पहुँचाते है। इतना ही नहीं बल्कि सिद्धभगवंत भी अरिहंत के उपदेश से ही चारित्र स्वीकार करके कर्मरहित बनकर सिद्ध बनते है। इसलिए अरिहंत भगवंत को प्रथम नमस्कार होता है। वैसे अरिहंत परमात्मा का सबसे ज्यादा उपकार होने से उन्हें पहले नमस्कार किया जाता है।

प्रश्न: अरिहंत भगवान की अनुपस्थिति में वर्तमान में अरिहंत भगवान का परिचय आचार्य, उपाध्याय या साधु कराते है। इस तरह अरिहंत से भी ज्यादा उपकारी तो साधु होने चाहिए तो फिर उपकारी की दृष्टि से तो अरिहंत से पहले साधु भगवंतों को नमस्कार क्यों नहीं किया जाता है। ?

उत्तर: आचार्य आदि भी अरिहंत भगवान के उपदेश अनुसार ही उपदेश देते है। अपनी स्वतंत्रता से वे नहीं बोलते। वैसे आचार्य आदि के मूल में भी अरिहंत ही रहे हुए है। इसलिए पहले अरिहंतों को नमस्कार किया जाता है।

अरिहंत राजा समान है, और आचार्य आदि उनकी पर्षदा (सभा) समान है। राजा को नमस्कार करने के बाद ही सभी को नमस्कार होता है। इसलिए **सभा समान आचार्य** आदि को नमस्कार करने से पहले **राजा समान अरिहंत** को नमस्कार करना चहिए।

प्रश्न: पंच परमेष्ठियों के कुल कितने गुण होते है ?

उत्तर: अरिहंत भगवंत के 12 गुण, सिद्ध भगवंत के 8 गुण, आचार्य के 36 गुण, उपाध्याय के 25 गुण और साधुओं के 27 गुण। इस तरह कुल 108 गुण पंच परमेष्ठियों के होते है।

बार गुण अरिहंत देव, प्रणमीजे भावे,
सिद्ध आठ गुण समरता, दु:ख दोहग जावे.. 1

आचारज गुण छत्रीस, पचवीस उवज्झाय
सत्तावीस गुण साधुना, जपतां शिवसुख थाय.. 2

अष्टोत्तर शत गुण मलीए, एम समरो नवकार,
धीर विमल पंडित तणो, नय प्रणमे नित सार.. 3

6. नाद घोष

तपस्या संबंधी

1. तपस्वी	:	अमर बनों
2. तपस्या करने वालों को	:	धन्यवाद, धन्यवाद
3. आज नो दिवस केवो छे	:	सोना थी पण मोंगो छे
4. आधी रोटी खायेंगे	:	जैन धर्म के सिद्धांत अपनायेंगे
5. आधी रोटी खायेंगे	:	तपस्वी के साथ जाऐंगे
6. जब तक सूरज चांद रहेगा	:	तपस्वी का नाम रहेगा
7. दीवो रे दीवो मंगलिक दीवो	:	तपस्वी हमारा जुग जुग जीओ
8. ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार	:	तपस्वी हमारा सुपर स्टार
9. पेप्सी, लेमन, कोकोकॉला	:	तपस्वी का बोलंबाला
10. एक कचौड़ी, दो समोसा	:	संसार तेरा क्या भरोसा

7. मेरे गुरू

A. गोचरी का लाभ लेने की विधि

श्रावक धर्म में दान धर्म का अग्रगण्य स्थान है। दान में भी सुपात्र दान सर्वश्रेष्ठ है। सात क्षेत्र में देव (तीर्थंकर) रत्न पात्र है। गणधर सुवर्ण पात्र, गुरू (साधु–साध्वी) रजत पात्र हैं, एवं साधर्मिक को कांस्य पात्र बताया है।

साधु–साध्वी को आहार देने से उनके संयम जीवन में सहायक बना जाता है। उनकी संयम आराधना का हमें लाभ मिलता है। **जीवन में धन–धान्य, भोग सामग्री आदि मिलना सरल है। लेकिन महान् पुण्योदय के बिना निःस्पृही ऐसे साधु संतों का समागम होना अति दुर्लभ है।** अतः जब गांव में साधु भगवंत बिराजमान हो तब प्रतिदिन बड़े उत्कृष्ट भाव के साथ गोचरी के लिए निमंत्रण देना चाहिए। साथ ही निम्न दोषों को टालने का उपयोग रखना चाहिए।

* गोचरी के समय सीढ़ियां एवं गृहांगन कच्चे पानी से गीली न हो इस बात का उपयोग रखें।
* गुरु महाराज को आए हुए देखकर लाईट, पंखा, टी.वी., गैस वगैरह बंद हो तो चालु एवं चालु हो तो बंद नहीं करना चाहिए।
* गुरू महाराज को आए हुए देखकर कच्चे पानी का लोटा, कच्चे पानी की बाल्टी अथवा लीलोतरी

आदि उनके निमित्त से एक जगह से दूसरी जगह पर रखना नहीं, एवं उन सबको स्पर्श भी नहीं करना। अन्यथा सचित्त के संघट्टा का दोष लगता है।

* फ्रीज खोलकर कुछ निकालना नहीं।
* अचित्त फ्रुट वगैरह एवं दूध वगैरह को पानी के मटके अथवा फ्रीज के उपर नहीं रखना।
* गरम पानी घर के लिए बनाया हो तो उसके बराबर तीन उकाले लेना चाहिए एवं सचित्त पानी से अथवा सचित्त वस्तु से अलग रखें।
* म.सा. को वहोराने के लिए कच्चे पानी से हाथ नहीं धोना चाहिए एवं वहोराने के बाद भी कच्चे पानी से हाथ नहीं धोना चाहिए। अगर हाथ अचित्त से खराब हैं, और धोना है तो कुकर गैस से नीचे उतारने के बाद उसके नीचे रहा हुआ पानी रख ले, जरूरत हो तो, वह पानी अचित्त होने के कारण उसमें हाथ धोकर वोहरा सकते है।
* अधकच्ची पकी हुई काकडी आदि म.सा. के लिए अकल्प्य हैं।
* फ्रुट वगैरह सचित्त वस्तु सुधारने के बाद 48 मिनट के बाद वहोराएँ।
* वहोराते समय दूध-घी आदि के छीटें जमीन पर न गिरें। छींटे गिरने पर दोष लगता है। अतः पहले ठोस (कठिन) वस्तु वहोराने के बाद तरल वस्तु वहोरानी चाहिए। जिससे पहले ही छींटा गिर जाये तो म.सा. कुछ भी वहोरे बिना न चले जायें।
* छर्दित दोष से बचने के लिए पात्रे रखने के स्थान पर थाली या पाटा वगैरह लगाया जाता है ताकि कोई छींटा जमीन पर न गिरे। फिर थाली का उपयोग खाने के लिए कर लेना चाहिए। म.सा. को वहोराने के पहले या बाद में हाथ नहीं धोने चाहिए अन्यथा म.सा. के निमित्त से हाथ धोने से कच्चे पानी की विराधना का दोष लगता है। इसलिए धोना पडे तो पूर्वोक्त कुकर की विधि अजमाये।

B. गोचरी में उपयोग रखने संबंधि कुछ बातें

1. साधु भगवंतों को शुद्ध एवं निर्दोष आहार पानी वहोराने का लाभ मिले इस हेतु से श्रावक-श्राविका को जब साधु - संत गांव में हों तब कच्चा पानी, सचित्त एवं रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिए। गोचरी के समय को ध्यान में रखते हुए उस अनुसार अपना भी आहार-पानी का समय बना लेना चाहिए। शाम को चौविहार या तिविहार अवश्य करना चाहिए। लेकिन उन सब में गुरू भगवंत का उद्देश्य न आ जाये इस बात का पूरा पूरा ख्याल रखना चाहिए। ऐसा करने पर साधु-संत पधारे तो उन्हें निर्दोष आहार- पानी वहोराने का उत्तम लाभ मिलता है एवं न भी पधारे तो श्रावक को प्रासुक अन्न-जल वापरने से लाभ ही है।
2. साधु बीमार, वृद्ध, बाल, तपस्वी हो अथवा विहार में अव्यवस्था आदि विशिष्ट कारण आ जाने

पर उपयोगवंत श्रावक को उस समय साधु भगवंत को जिस वस्तु की आवश्यकता है, उस बात का उपयोग रखना चाहिए। अथवा कोई महात्मा उन्हें उपयोग (कुछ बनाने को कह दे), तो बड़े उत्कृष्ट भाव से उन्हें उस वस्तु को वहोरानी चाहिए। इसमें भी भारी लाभ ही है

3. श्रावक को साधु–साध्वी के माता–पिता कहा गया है। उनकी संयम आराधना का ध्यान रखना श्रावक का फर्ज है। न तो उनके संयम को शिथिल बनने दे, न ही संयम को सीदाने (मुरझाने) दे। लेकिन जिस प्रकार से साधु ज्यादा से ज्यादा संयमी बने रहें, उस प्रकार से संयम के उपकरणादि की अनुकूलता कर देने का विधान है।

4. स्थापना कुल : उदार वृत्तिवाले और विशाल परिवार वाले घर, जहां साधु भगवंतों को जो चीज जब भी चाहें मिल जावें, जहां पर चार–पाँच बार जाने पर भी श्रावक मन में अभाव न लाकर भाव पूर्वक वहोराते रहें, ऐसे घरों को स्थापना कुल कहते हैं। यद्यपि साधु भगवंत आचार्यादि के लिए या विशिष्ट कारण से ही ऐसे घर से गोचरी लाते हैं।

5. जो घर उपाश्रय के नजदीक हैं एवं जिस गांव से साधु भगवंतों का विहार अधिक होता है, उनको विशेष उत्साह एवं विवेक रखना चाहिए। उनके लिए सब प्रकार के सुकृतों से सुपात्र दान का लाभ विशेष बन जाता है, कहीं घर कम हों या अपना घर पास में हो एवं साधु भगवंतों का विशेष आने का बनता हो, तो श्रावक को उत्कृष्ट भाव से लाभ लेना चाहिए, लेकिन मन में दुर्भावना नहीं लानी चाहिए। इससे साधु–संतों को शाता मिलने से उनके अंतर के आशिष अवश्य प्राप्त होते है।

6. जब भी महात्मा गृहांगण में पधारे उस समय अति आनंदित होकर उन्हें पधारने का आमंत्रण देना चाहिए। घर के सारे सदस्यों को खड़े होकर उनका विनय करना चाहिए। लेकिन छोटे या बड़े गुरु भगवंत की उपेक्षा करके अगर टी.वी. देखना, समाचार पत्र पढ़ना, बातें करना आदि में व्यस्त रहे तो आशातना का दोष लगता है। सभी को वहोराने में हाथ रखना चाहिए। बच्चो को भी गुरु भगवंत को वहोराने के संस्कार डालने चाहिए।

7. बहुत बार अज्ञानी लोग नजदीक में म.सा. की आवाज सुनकर अपने घर में साधु के निमित्त आरंभ करके खिचिया, पापड़ सेंकते हैं, वह बराबर नहीं है एवं बहुत लोग अपने लिए बन रही रसोई, दूध वगैरह को म.सा. का उद्देश्य बनाकर दोषित कर देते हैं, जो बराबर नहीं है। कुशल श्रावक श्राविकाओं को नियम (1) के अनुसार उपयोग रखना चाहिए।

8. गांव में आयंबिल खाता न हो एवं म.सा. को आयंबिल हो तो म.सा. के लिए अलग बनाने की जरुरत नहीं होती। जो भी आपके घर बन रहा हो उसमें से ही उपयोग पूर्वक लुखा निकाल लेना चाहिए। अथवा म.सा. को वहोराने के पहले वघारना नहीं चाहिए। सभी अथवा कुछ रोटियाँ लुखी ही रखनी चाहिए।

9. वहोराते समय सर्व प्रथम उत्तम द्रव्यों को बताना चाहिए फिर सामान्य द्रव्य बताने का विधान है। नहीं तो पहले समान्य चीज ले लें तो विशेष लाभ से वंचित रह जाते हैं, एवं जिसमें छींटे गिरने की संभावना हो वे पदार्थ अंत में वहोराने चाहिए, नहीं तो पहले ही छींटे गिर जाने से म.सा. बिना वहोरे जा सकते हैं।

10. कभी म.सा. पधारे हों और आपके घर रसोई नहीं बनी हो, तो दरवाजे से म.सा. को ''रसोई नहीं बनी है'' इस प्रकार कहकर लौटाना नहीं चाहिए। अपितु उन्हें बहुमान पूर्वक आमंत्रण देकर, घी, गुड़, दूध, शक्कर, खाखरा, सुंठ, पीपरामूल आदि जो भी चीज घर में हो उसका लाभ देने की विनंती करना चाहिए।

11. जब भी म.सा. पधारते हैं, तब उनका भक्ति पूर्वक स्वागत एवं वहोराने के बाद समयानुसार पुनः लौटाने जाना चाहिए। कम से कम अपने घर के बाहर तक पहुंचाने तो जाना ही चाहिए। म.सा. गांव में अनजान हो तो उन्हें आस-पास के सभी घर दिखाने चाहिए।

12. म.सा. को वहोराने का आग्रह रखना उचित है, लेकिन इतना आग्रह भी नहीं करना चाहिए कि उनको तकलीफ उठानी पड़े। अतः विवेक रखें।

13. जब भी घर से गाड़ी लेकर निकल रहे हो, तब म.सा. को रास्ते में देखने पर अवश्य गाड़ी को रोककर उन्हें गोचरी, दवा आदि काम-काज के लिए पूछे। रास्ते में कोई भी तकलीफ आदि में भी आप सहायक बन सकते हैं। जरूरत पड़ने पर अपना काम गौण करके भी म.सा. का कोई काम हो तो करने से खूब लाभ मिलता है।

14. स्वयं खाने से पहले झरोखे या खिड़की से कोई साधु संत, साधर्मिक आदि का योग हो जाए ऐसी भावना पूर्वक देखना चाहिए।

15. प्रत्येक जैन को अपने फ्लेट के बाहरी दरवाजे पर बारसाख में परमात्मा की मंगल मूर्ति लगानी चाहिए। अगर मकान अपनी मालिकी का न हो तो भी जैनियों के प्रतिक रूप में जयजिनेन्द्र या भगवान, अष्टमंगल, नवकार मंत्र आदि का फोटो अवश्य लगाना चाहिए। ताकि म.सा. को मालूम पड़े कि यह जैन का घर है।

प्रश्नः साधु भगवंत 'धर्मलाभ' बोलते हैं, इसका अर्थ क्या है?

उत्तरः धर्मलाभ का अर्थ है कि सर्व विरति धर्म का लाभ (प्राप्ति) तुम्हें हो। अपने पास जो है उसकी प्राप्ति दूसरों को भी हो ऐसा आशीर्वाद पू. गुरु भगवंत देते हैं। क्योंकि देश विरति धर्म को धर्माधर्म कहा जाता है, क्योंकि इसमें धर्म का अंश है और धर्म से ज्यादा अधर्म है। इसलिए गृहस्थ सर्वविरति धर्म का आशीर्वाद चाहते हैं और साधु भगवंत देते हैं।

४. दिनचर्या

A. रात्रि शयन विधि

सोते समय ऐसा विचार करके सोएँ कि मुझे प्रातः समय पर उठना ही है। क्य ंकि इस प्रकार संकल्प करके सोते हैं, तो लगभग जिस समय उठना हो, उसी समय उठ ही जाते है। स ते समय निम्न प्रकार से बोलें–

* सोना नु कोडीयुं रुपा नी वाट,
आदीश्वर दादा नु नाम लेता, सुखे जाए रात।
नवकार तुं मारो भाई, तारे मारे घणी सगाई
अंत समय याद आवशोजी, मारी भावना शुद्ध राखजो जी।।

* काने मारे कुंथुनाथ, आंखे मारे अरनाथ,
नाके मारे नेमिनाथ, मुखे मारे मल्लीनाथ,
सहाय करे शांतिनाथ, परचो पूरे पार्श्वनाथ।।
ज्ञान मारा ओशीके, शीयल मारे संथारे,
भरनिद्रा मां काल करूँ, तो वोसिरे वोसिरे वोसिरे।।

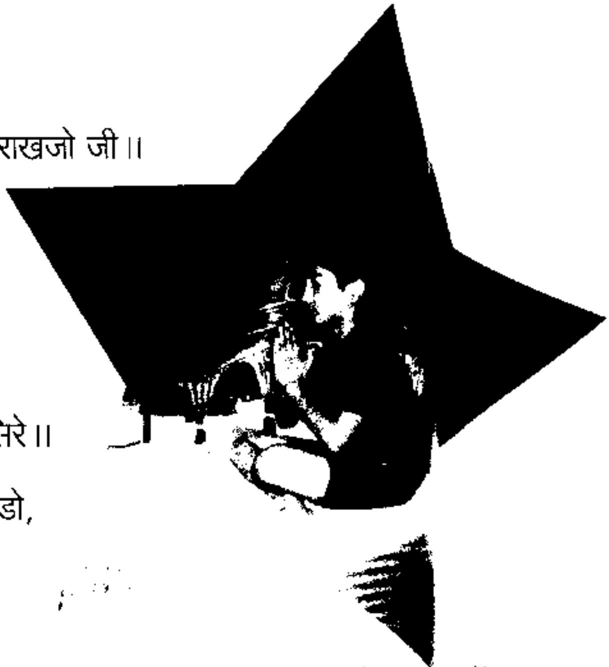

* अरिहंत नो कुकडो, झेरी जंतु न आवे ढूंकडो,
अरिहंतनी कुकडी, मुक्ति मले ढूंकडी,
अरिंहत नो घोडो, कीधा कर्म छोडो।।

ये गाथाएँ बोलने के बाद सात भय के निवारणार्थ सात नवकार मंत्र हाथ जोडकर गिनें।

जैनेतर ग्रंथों में भी उल्लेख हैं, कि सोते समय वेद मंत्रों का पाठ करें और ईश्वर क पास अपने कल्याण की प्रार्थना करके सोना चाहिए।

सोते समय अपना मस्तक दक्षिण या पूर्व दिशा की ओर रखें। दक्षिण या पूर्व दिशा म पाँव न रखें, क्योंकि दक्षिण दिशा में यम का निवास कहा जाता है और व्यक्ति के मस्तक में एक शक्ति (मेग्नेट) है, जो शिखा वाले भाग में रही हुई है। उत्तर दिशा में मस्तक रखने से उस शक्ति की गति की स ख्या (स्पीड) नित्य की अपेक्षा बढ जाती है जिससे अलग–अलग प्रकार के विकार उत्पन्न होते है, और ह ारे शरीर को हानि पहुँचती है।

रात्रि में जगना और दिन में सोना नीति शास्त्र के विरूद्ध है।

रात्रि शयन में अल्प निद्रा करें, क्योंकि अपने आगम शास्त्रों में उल्लेख आता है के जो अल्प आहारी होते है, जो अल्प नींद लेते है और जो अल्प हिंसा व अल्प परिग्रह वाले होते हैं, ज अल्प क्रोध

कषाय वाले होते है। वे अल्प संसारी होते हैं अर्थात् उनका इस संसार में भ्रमण कम हो जाता है।

आचारोपदेश ग्रंथ में कहा है, कि सोते समय निम्नलिखित चार भगवान के नाम का स्मरण किया जाएँ

1. श्री नेमिनाथ भगवान – जिससे दुष्ट (गंदे) स्वप्न न आएँ।
2. श्री पार्श्वनाथ भगवान – जिससे दुःस्वप्न (खराब स्वप्न) न आएँ।
3. श्री चंद्रप्रभ स्वामी – जिससे सुखपूर्वक निद्रा आए।
4. श्री शांतिनाथ भगवान – जिससे चोरादि का भय न लगें।

साथ ही यह मान के चले की इस लोक में महा कल्याणकारी श्री अरिहंत भगवान, श्री सिद्ध भगवान, श्री मुनि भगवंत और श्री वीतराग भाषित धर्म–ये चार ही संसार में सच्ची शरण देने वाले है अतः इनकी भावपूर्वक शरण प्राप्ति हेतु प्रार्थना करें।

(2) पूर्व भवों में तथा वर्तमान भव में एकत्रित किये हुए पाप के साधन, शरीर, धन, कुटुम्बादि त्रिविध–त्रिविध प्रकार से वोसिराता हूँ।

(3) संसार के सभी जीवों को मैं खमाता हूँ (क्षमा करता हूँ), वे सभी मुझे क्षमा प्रदान करें, मुझे किसी पर क्रोध द्वेष नहीं है, छोटी सी जिंदगी में मुझे किसी के भी साथ बैर नहीं रखना है, अनेक गतिओं में रहे हुए सभी जीव मेरे मित्र है। सभी सच्चे सुख के साधक बनें। इस प्रकार चार का शरण आदि स्वीकार और सभी जीवों के साथ क्षमा याचना करके सोना चाहिए।इस प्रकार सो जाने के बाद प्रातःकाल में पूर्व में निर्दिष्ट विधि के अनुसार ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाएँ और जिस प्रकार आपको दिनचर्या बताई है तदनुसार प्रतिदिन उसका पालन करें।इस प्रकार समस्त दिनचर्या का पालन–आचरण करता हुआ बालक निर्दोष (दोष रहित) अर्थात Good Boy बनकर इस लोक में कीर्ति पात्र बनता है तथा परलोक में सद्गति को प्राप्त करता है।

B. श्रावक के दैनिक 36 कर्त्तव्य

1. **जिनाज्ञा का पालन – जैन सूत्रों के प्रति आस्था तथा उनका पालन –** जिनेश्वर भगवान के द्वारा जो काम करने की आज्ञा हो वह काम करना, उसके विपरीत काम नहीं करना।
2. **मिथ्यात्व का त्याग करना** – भव भ्रमण का मुख्य कारण मिथ्यात्व है यानि खोटी या झूठी समझ उसका त्याग करना।
3. **सम्यक्त्व को धारण करना** – सुदेव, सुगुरु और सुधर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा रखना।
4. **सामायिक करना –** इसका अर्थ है समता भाव में रहना। इससे समता की वृद्धि होती है। यह नित्य 48 मिनट तक की जाती है और करेमि भंते सूत्र द्वार उच्चरायी जाती है।
5. **चतुर्विंशतिस्तव (लोगस्स)** – चौबिस जिनेश्वरों की स्तुति, चतुर्विंशतिस्तव द्वारा प्रभु–भक्ति में लीन होना।

6. **वंदन** – वंदन द्वारा गुरु के प्रति विनय बताना।
7. **प्रतिक्रमण** – प्रमादवश स्वस्थान से परस्थान में गयी हुई आत्मा को स्वस्थान में लाना, यानी पापों से पीछे हटना। लोक मर्यादा एवं धर्म सिद्धांतो का हमारे द्वारा जाने-अनजाने में अतिक्रमण होता है उसका निवारण है प्रतिक्रमण।
8. **कायोत्सर्ग** – ध्यान में लीन रहना।
9. **पच्चक्खाण** – त्याग-भावना का विकास रखना।
10. **पर्व दिनों में पोषध करना** – यानी अष्टमी, चतुर्दशी आदि दिनों में पोषध करना।
11. **दान देना** – अपनी शक्ति अनुसार दान देना।
12. **सदाचारी बनना** – जीवन में औरों के प्रति अपना आचरण निर्मल रखना।
13. **तपस्या करना** – कर्म बंधन से आत्मा को मुक्त करने हेतु तपस्या करना आवश्यक है। इससे कर्म की निर्जरा होती है।
14. **शुद्ध भावना भाना** – मैत्री, प्रमोद, कारूण्य व माध्यस्थ भावना का रहस्य जानकर उन्हे अपने आचरण में लाना। सद् संसारी के लिए ये चारों बाते आवश्यक है।
15. **स्वाध्याय करना** – गुरु के पास धार्मिक अभ्यास करना तथा पवित्र पुस्तकों को पढना, उन पर मनन करना, शंका हो तो गुरू से समाधान पाना। दूसरो को भी प्रेरणा देना।
16. **प्रतिदिन नमस्कार मंत्र का यथाविधि जाप** करना।
17. **परोपकारी बुद्धि रखना** – सभी के प्रति सद्भाव रखना। सर्व मंगल की कामना करना। सर्व जीवों पर उपकार के लिए सदा तत्पर रहना।
18. **जयणा का पालन करना** – हरेक काम सावधानी पूर्वक करना । बने उतनी दया का पालन करना। सूक्ष्म अहिंसा के पालन हेतु यह आवश्यक है। इसी का नाम जयणा है।
19. **जिनेश्वर की पूजा** – नित्य जिनेश्वर की त्रिकाल पूजा करना।
20. **जिनेश्वर की स्तुति** – श्री जिनेश्वर देव के नाम की नित्य स्तवना करना एवं उनके गुणों का कीर्तन करना।
21. **सद्गुरु के गुणों की स्तुति करना** – क्योंकि गुरू बिन ज्ञान कभी नहीं मिलता।
22. **साधर्मिक वात्सल्य** – समान धर्मी भाई-बहनों के प्रति वात्सल्य यानि प्रेम भाव रखना।
23. **व्यवहार बुद्धि** – व्यवहार शुद्ध रखना यानि प्रामाणिक रहना।
24. **तीर्थ यात्रा** – कुटुंब-परिवार के साथ तीर्थ-यात्रा करना।
25. **रथ-यात्रा** – जिनेश्वर देव की रथ यात्रा का आयोजन करना।
26. **कषाय का त्याग करना** – कष+आय – कष यानी संसार, आय यानी लाभ । जिससे संसार का लाभ हो वह है कषाय । क्रोध, मान, माया, लोभ हमें नहीं करना चाहिए।
27. **विवेक रखना** – अपने हर कार्य में श्रावकोचित विवेक रखना।

28. **संवर की करणी करना** – सामायिक वगेरे करना । संवर यानि कर्म बंधन के कारणों की रोक थाम।

29. **बोलने में सावधानी रखना** – प्रिय, तथा सत्य बोलना।

30. **छ:काय के जीवों के प्रति करुणा भाव** रखना यानी उनके प्रति कठोर नहीं बनना।

31. **धर्म परायण मनुष्य का संग** करना ।

32. **इन्द्रियों पर काबू** रखना ।

33. **चारित्र की भावना** रखना, प्रतिदिन सोने से पहले श्रावक के करने योग्य कर्तव्य करने का मनोरथ करना ।

34. **संघ के प्रति बहुमान** भाव रखना ।

35. **धार्मिक पुस्तके लिखाना** तथा उनकी यथाशक्ति प्रचार करना।

36. **जैन शासन की प्रभावना** करना तथा जैन–शासन की प्रभावना हो, वैसा काम करना।

ये श्रावक के 36 कर्तव्य हैं जो नित्य करने योग्य हैं ।

9. भोजन विवेक

A. रात्रिभोजन त्याग

पूर्व के विषयों में हमने पढा कि सीज़न बदलते ही हवामान बदल जाते है। हवामान के परिवर्तन से भक्ष्य पदार्थ भी अभक्ष्य बन जाते है। इसी तरह दिन में भक्ष्य खाद्य पदार्थ रात के समय अभक्ष्य– बेस्वाद बन जाते है। जैसे सूर्य की हाजरी में मानव के शरीर के टेम्प्रेचर का फर्क पड जाता है। जैसे वनस्पतियों पर सूर्यप्रकाश की असर होती है। वैसे ही सूर्य की हाजरी में भोजन सही–सलामत रहता है। सूर्यास्त के बाद पकाया हुआ भोजन विकृत हो जाता है। जैसे आकाश में आद्रा नक्षत्र लगने के बाद धरती पर आम का स्वाद अपने आप बदल जाता है वैसे ही सूर्यास्त होने के बाद रसोई का स्वाद अपने आप बदल जाता है।

तदुपरांत सूर्यास्त बाद कितने ही सूक्ष्म जंतु चारों ओर उड़ना चालू कर देते है। ये सुक्ष्म जंतु फल्डलाइट के प्रकाश में भी आँखों से नहीं दिख सकते। जैसे पक्षीयों में दिन में उडने वाले और रात्रि में उडने वाले ये दो विभाग होते है, जैसे पशुओं में दिन में चरनेवाले और रात्रि में चरनेवाले ये दो विभाग होते हैं वैसे ही सूक्ष्म जंतुओं में भी दिन में उडने वाले और रात मे उडने वाले ऐसे दो विभाग होते है। इन जंतुओं को हॉस्पीटल का स्टरीलाइज़ड वातावरण भी नहीं रोक सकता। इसलिए **डॉक्टर लोग भी मेज़र ऑपरेशन में डे-लाइट की अपेक्षा रखते है।** रात्रि में चाहें कितनी ही फ्लडलाइट हो परंतु रात्रिचर सूक्ष्म किटाणुओं को देख नहीं सकते, उडते हुए रोक नहीं सकते, वे कीटाणु ऑपरेशन में खुल्ले भाग पर चोंटे तो ऑपरेशन फेल हो जाता है। इसलिए रात्रि में ऑपरेशन करना डॉक्टर भी टालते है। रात्रि में तैयार की हुई ताजी रसोई पर भी सैंकडो सूक्ष्म कीटाणु अपना अड्डा जमा देते है। भोजन करते वक्त ये सब पेट में जाते है। इसलिए रात्रिभोजन अयोग्य है। दिनभर परिश्रम से शरीर थका हुआ हो तब उसे विश्राम देने की

जरूरत होती है। पूर्ण विश्राम मिले तो सबेरे शरीर में स्फूर्ति आती है। आज का व्यक्ति पूरा दिन भटकता रहता है, फिर रात्रि में 10 बजे जब शरीर पूर्ण विश्राम मांगता है तब उसे भोजन देता है। होजरी की पूरी थेली फूलटाईट करके व्यक्ति सोने का प्रयत्न करता है। पर नींद नहीं आती, कारण की शरीर सोने का काम करें या अंदर गए भोजन को पचाने का काम करें ? दो काम एक साथ नहीं हो सकता । यदि व्यक्ति को नींद आ गई तो पेट में जो माल सप्लाय किया है वह पचे बिना ऐसा ही पडा रहेगा। वह पडे पडे सडेगा और एसीडीटी जैसे अनेक रोग पैदा करेगा। व्यक्ति अगर जागता रहेगा तो जागरन होगा और माथा दुःखने लगेगा, दोनो तरफ उपाधि है। इससे तो अच्छा है कि रात्रि में खाना ही नहीं।

थाणा जिल्ले के शाहपुर गांव से दो कि.मी. दूर एक बडा फॉरेस्ट है। हजारों वृक्ष इस वन में है। मैं अनेक बार शाम के समय इस जंगल तरफ से पसार हुआ हूँ। जब–जब इस तरफ गया हूँ तब–तब बराबर ध्यान पूर्वक मार्क किया है कि, सूर्यास्त होने के साथ ही सैकडों पक्षी दूर–दूर से उडते हुए आकर स्वयं के घोसले की जगह खोजते है। उनकी चीं–चीं की आवाज से पूरा आकाश गूंज उठता था। संध्या ढले तब तक वे अपने रैन बसेरे की व्यवस्था कर लेते थे। पंख सुकडकर आंख मूंदकर समय पर सो जाते थे। दूसरे दिन सूर्य के उदय होने के बाद ही अपनी जगह छोडकर दाने की खोज में निकलते थे।

तुम्हारे घर की छत पर यदि दाना डालने में आया हो तो तुम भी निरीक्षण करना कि **सूर्योदय होने के पहले कोई भी पक्षी दाना चुगेगा नहीं। दाने का ढेर पडा हो तो भी सूर्यास्त के बाद कोई भी पक्षी एक दाना भी मुंह में नहीं लेगा।** इन पक्षियों को किसी धर्मगुरु ने रात्रिभोजन त्याग की सौगंध नहीं दी परंतु कुदरती रीति से ये लोग भोजन को त्याग देते है। मानव समझदारी का ठेका लेकर फिरता है, फिर भी एक कबूतर या चिडीयाँ जितनी सीधी सादी समझ भी उसके पास नहीं यह कितने अफसोस की बात है।

एक श्लोक में नरक के चार द्वार बताये है। प्रथम द्वार रात्रिभोजन को कहा है। नरक का नेशनल हाईवे नं. 1 तरीके प्रसिद्धि प्राप्त किया हुआ यह पाप को समझदार व्यक्ति को जल्द से जल्द छोड देना चाहिए। नहीं तो गाडी गेरेज से निकल कर नेशल हाईवे नं. 1 पर दौड जायेगी।

कुछ सावधानीयाँ:–

1. रात्रिभोजन के त्यागियों को शाम के समय घडी का कांटा देखते रहना चाहिए। सूर्यास्त का समय रोज ध्यान में रखना चाहिए। एकदम आखिरी टाईम में भोजन करने से **लगभग वेलाअे वालुं कीधुं** ऐसा अतिचार लगता है। इसलिए खाना, मुंह साफ करना, दवा लेना एंव पानी चूकाना (पीना) आदि का समय निकालकर भोजन कर लेना चहिए।

2. सूर्योदय के बाद सबेरे नवकारशी के लिये दो घडी का समय पालते है वैसे ही सूर्यास्त के पूर्व दो घडी का समय पालना चाहिए और शक्य हो तो दो घडी पूर्व ही चोविहार कर लेना चाहिए।

3. नौकरी धंधा आदि के कारण बाजार से घर पहुँच नहीं सकते उनको घर से टिफिन साथ में ले जाना चाहिए। आज–कल अहमदाबाद में मस्कती मार्केट में अनेक जैन व्यापारी शाम का खाना टिफिन में खाते है। मुंबई जैसे शहर में भी चातुर्मास दरम्यान चोविहार हाउस चालू हुए है, जो कि संध्या

के समय पूरा भरा रहता है, अब तो हमेशा के लिये चोविहार हाउस बम्बई में चालू हो गया है। यदि मुंबई की लाइफ जीनेवाले व्यक्ति भी चोविहार पाल सकते है तो अन्य शहरों, गांवों में भी लोग मन में निश्चय करे तो निश्चित चोविहार का लाभ ले सकते है।

4. पति रात्रिभोजन करते हैं इस कारण बहनों को भी अनिच्छा से रात्रिभोजन करना पड़ता हैं। इस तरह एक के कारण दोनों पाप में पड़ते हैं। इससे अच्छा तो भाइयों को चउविहार चालू कर देना चाहिए, जिससे बहनों को भी चउविहार का लाभ मिल जाये।

5. आज की जिन्सी पीढ़ी में विवाह होने के बाद रविवार को घूमने और होटल में खाने का क्रेज़ बढ़ता चला है। पूरे एक सप्ताह तक पेट भरकर दवाई खा सके इतना कचरा रविवार को भर लेता है । फिर उसकी तबियत सोमवार/मंगलवार को बिगड़ती है, इसका कारण रविवार होता हैं। सप्ताह के सात दिनों में से छः दिन तो मानव सीधा चलता हैं परन्तु रविवार को उसकी चानक चसक जाती हैं। रविवार को रात्रि में 8 से 12 बजे के बीच भारतभर की आधी बस्ती लगभग पागल की स्थिति में रहती हैं। टेम्परारी मेडनेस के बीच मानव खाना, पीना, खेलना और भोग करके अनेक पाप कर लेता हैं। जिसको रविवार के टेम्परारी मेडनेस से और परमानेन्ट बीमारी से बचना होतो ज्यादा नहीं केवल एक प्रतिज्ञा लेनी चाहिये कि, रविवार को रात्रि में घर से बाहर निकलना नहीं।

6. रात्रि में चउविहार का पच्चक्खाण नहीं कर सकते तो मात्र पानी की छूट रखकर तिविहार का पच्चक्खाण कर सकते हैं। रात्रि भोजन त्याग का नियम पालना हो और रात्रि में दवा लेनी पड़े तो दवा के लिये दुविहार का पच्चक्खाण भी कर सकते हैं। पानी और दवा की छूट के लिये पूरी जिंदगी रात्रिभोजन करने की जरा भी जरुरत नहीं हैं।

B. रात्रि भोजन - जैनेतर दर्शन की दृष्टि से

परमोत्कृष्ट श्री जिनशासन जितनी सूक्ष्मता भले ही अन्य किसी भी धर्मों में न हो, परन्तु रात्रिभोजन को नरक का नेशनल हाईवे नं 1 कहा गया है, रात्रिभोजन करनेवाले का तप-जप-तीर्थयात्रा आदि सत्कार्य निष्फल हो जाते हैं। तर्क से भी रात्रिभोजन के पाप को सिद्ध करते हैं।

लगभग सभी दर्शनकारों ने रात्रिभोजन को पाप बताया हैं। उसका त्याग करने को कहते हैं और उसके त्याग का फल देवलोक बताते हैं। रात्रि भोजन के त्यागी को एक महीने में 15 दिन के उपवास का फल मिलता है। (आजकल के उनके उपवास की तरह नहीं, जिसमें हमेशा से ज्यादा आहार लिया जाता है।)

C. रात्रिभोजन - जैनेतर ग्रंथों के आधार पर :

जैनेतर ग्रंथों में रात्रिभोजन के लिए क्या कहा गया है , उसे हम देखने जा रहे हैं। रात्रिभोजन यानि नरक का नेशनल हाईवे नं. 1

चत्वारो नरकद्वारा, प्रथमं रात्रिभोजनम्।
परस्त्रीगमनं चैव, सन्धानानन्तकायिके।।

पद्मपुरण – प्रभासखंड

जैनेतर ग्रंथों ने नरक के चार द्वार बताये हैं वे द्वार क्रमश :

1. पहला द्वार–रात्रिभोजन
2. दूसरा द्वार–परस्त्रीगमन
3. तीसरा द्वार–कैरी आदि का आचार, कडक अच्छी तरह तीन दिन धूप दिये बिना का (बोले आचार)
4. चौथा द्वार–अनंतकार का भक्षण है।

मद्यमांसाशनं रात्रौ – भोजनं कंदभक्षणम्।
ये कुर्वन्ति वृथास्तेषां, तीर्थयात्रा जपस्तपः ।।

– महाभारत (ऋषीश्वर भारत)

कहा गया है कि, जो मनुष्य मदिरा – दारु, मांस, रात्रिभोजन और कंदमूल का भक्षण करते हैं, उनकी तीर्थयात्रा, जप–तप आदि अनुष्ठान निष्फल होते हैं।

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेनमहर्षिणा।।

–मार्कण्ड पुराण

अर्थात् सूर्यास्त होने के पश्चात पानी पीना खून पीने के बराबर है और अन्न खाना मास खाने के बराबर है। यह मार्कण्डेय ऋषि ने बताया है।

मृते स्वजन मात्रेऽपि, सूतकं जायते किल ।
अस्तंगते दिवानाथे, भोजनं किमु क्रियते।।

अर्थात् जिस तरह स्वजन और संबंधियों की मृत्यु होने पर भोजन किस तरह कर सकते हैं। यानि कि सूर्यास्त होने के बाद रात्रिभोजन कदापि नहीं करने योग्य है।

(यहाँ पर याद रखने की बात यह है कि, यह विधान हिन्दुओं के ग्रंथों का है। सर्वज्ञो द्वारा कथित जैन धर्म का नहीं।)

मद्यमांसाशनं रात्रौ – भोजनं कंदभक्षणम् ।
भक्षणात् नरकं याति, वर्जनात् स्वर्गमाप्नुता्।।

अर्थात् जो मनुष्य मदिरा, मांस, रात्रिभोजन और कंदमूल का भक्षण करते हैं वे नरक गति में जाते हैं और जो मनुष्य मदिरा, मांस, रात्रिभोजन, कंदमूल भक्षण का त्याग करते हैं वे स्वर्ग में जाते हैं।

रात को कौन खाता है ?

देवैस्तु भुक्तं पूर्वाह्ने, मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा।
अपराह्ने तु पितृभि, सायाह्ने दैत्यदानवैः।।

संध्यायां यक्षरक्षोभिः, सदा भुक्तं कुलोद्वह।
सर्ववेलां व्यतिक्रम्य, रात्रौ भुक्तमभोजनम् ।।

यजुर्वेद आह्निक श्लोक 24-19

ये युधिष्ठिर ! हमेशा देवगण दिन के प्रथम प्रहर में भोजन करते हैं। ऋषिमुनि आदि दिन के दूसरे प्रहर में भोजन करते हैं। पिता लोग दिन के तीसरे प्रहर में भोजन करते हैं। और दैत्य-दानव, यक्ष और राक्षस शाम के समय भोजन करते हैं। इन देवों के भोजन के समय को छोड़कर जो रात्रिभोजन करते हैं वह भोजन, अभोजन के बराबर है। यानि खराब भोजन है।

नक्तं न भोजयेद्यस्तु, चातुर्मास्ये विशेषतः ।
सर्वकामानवाप्नोति, इहलोके परत्र च ।।

- योगवाशिष्ठ पूर्वार्धे श्लो. 108

जो आत्मा हमेशा रात्रिभोजन नहीं करती है और चौमासे में विशेष प्रकार से रात्रिभोजन का त्याग करती है उस आत्मा के इस भव और दूसरे भव के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। सामान्य दिन में पाप नहीं करना और चौमासा में विशेष पाप का त्याग करना और आराधना करना ऐसा अन्य दर्शन भी बताते हैं। जैन दर्शन बताता है कि, चातुर्मास के समय में विशेष जीवों की उत्पत्ति होती है, इसलिए चौमासे में विशेष अभिग्रह ग्रहण करना चाहिए।

यो दद्यात् काञ्चनं मेरुं, कृत्स्नां चैव वसुंधराम्।
एकस्य जीवितं दद्यात्, न च तुल्यं युधिष्ठिर।।

- महाभारत

हे युधिष्ठिर ! एक मनुष्य सोने का पर्वत या संपूर्ण पृथ्वी का दान करे और दूसरा मनुष्य मात्र एक प्राणी को जीवन दान दे तो इन दोनों की तुलना हम नहीं कर सकते बल्कि देखा जाय तो अभयदान बढ़ जाता है।

<u>अहिंसा का फल :</u>

दीर्घमायुः परं रुप-, मारोग्यं श्लाघनीयता।
अहिंसायाः फलं सर्वं, किमन्यत् कामदैव सा।।

-योगशास्त्र प्र. 2/52

अर्थात् दीर्घ आयुष्य, श्रेष्ठ रुप आरोग्य और प्रशंसनीयता यह सब अहिंसा का फल है। ज्यादा क्या कह सकते हैं? मनोवांछित फल देने के लिए अहिंसा कामधेनु के समान है।

D. रात्रिभोजन - डॉक्टर - वैद्यों की दृष्टि से :

ये प्राचीन पंक्तियों तो सबको याद ही रहेगी कि...

पेट को नरम, पांव को गरम, सिर को रखो ठंडा।
फिर जब आवे डॉक्टर, तब उसको मारो डंडा।।

अर्थात् जो पेट को नरम रखता है, सिर को ठंडा रखता है, गुस्सा नहीं करता है, और पांव को गरम रखता हो तो उसे कभी भी डॉक्टर के पास जाने का काम नहीं पड़ता। आजकल अस्पतालें बढ़ती जा रही हैं, उसका कारण ऊपर लिखित बाते हैं। पेट को नरम-लाइट रखने के बदले टाइट करते रहते हैं। इस कारण इतनी सुस्ती आती है कि थोडी सी दूरी तय करनी हो तो भी चलने के बदले सीधा गाडी या स्कूटर में बैठ जाते है, फिर पांव गरम कैसे रहे । और बात बात में टेन्शन की वजह से सिर ठंडा कैसे रहे। इस तीनों बातों में आजकल हम उल्टी दिशा में जा रहें हैं।

* अधिक आहार के समान रात्रिभोजन भी बिमारी का उद्गम स्थान है। डॉक्टरों ने यह स्पष्ट कह दिया है कि, सोने के 3-4 घंटे पहले ही भोजन कर लेना चाहिए। जिससे भोजन का आसानी से पाचन हो सके।

* रात को पाचनतंत्र बंद पड़ जाने से उससे आहार का बराबर पाचन नहीं हो सकता और जिससे पेट खराब हो जाता है। पेट के कारण आँख, कान, नाक, सिर आदि की बिमारियाँ आने में समय नहीं लगता।

* सूर्य के प्रकाश में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि सूर्य का प्रकाश सूक्ष्म जीवों के लिए अवरोधक तत्त्व है।

* बड़े – बड़े ऑपरेशन हमेशा दिन के समय में ही होते हैं।

* भोजन के पाचन के लिए जरुरी ऑक्सीजन का प्रमाण सूर्य की उपस्थिति में मिलता है।

* रात के समय होजरी का कमल मुरझा जाता है, जो सूर्योदय होने के बाद खिलता है अर्थात् शारीरिक दृष्टि से भी रात्रिभोजन को हानिकारक बताया है।

E. रात्रिभोजन - सर्वसामान्य की दृष्टि से :

* रात्रिभोजन के त्याग से शरीर की रक्षा और आत्मरक्षा दोनों होती है।

* तन-मन-आत्मा प्रत्येक दृष्टि से रात्रिभोजन भयंकर हानिकर्ता है। यह प्रत्येक के लिए स्वानुभवसिद्ध है।

* चिड़िया, तोता, कौआ, कबूतर, मोर आदि पक्षी भी सूर्यास्त होने के बाद भोजन का त्याग करके अपने-अपने स्थान पर पहुँच जाते हैं। रात को चाहे कितना भी प्रकाश हो तो भी वे उड़ते नहीं हैं और भोजन भी नहीं करते हैं।

* काल की दृष्टि से भी रात्रि का काल ज्यादातर पापाचरणका काल हैं। क्योंकि उस समय भोगी लोग भोग के पाप में पागल होते हैं, चोर चोरी करने में मस्त रहते हैं। रात को फिरनेवाले उल्लू वगैरह पक्षी खुद के भक्ष्य की शोध में होते हैं।

* कौन जाने आज का मानव, मानव है या नरपिशाच है ? आजकल यह उल्टी मान्यता फैली हुई है, परंतु **जीवन जीने के लिये भोजन है... भोजन खाने के लिए जीवन नहीं।**

दया समो न य धम्मो, अन्नसमं नत्थि उत्तमं दाणं।
सच्चसमा न य कीत्ती, सीलसमो नत्थि सिंगारो ।।

अर्थात्

दया के समान कोई उत्तम धर्म नहीं है।
अन्न के समान कोई उत्तम दान नहीं है।
सत्य के समान कोई उत्तम कीर्ति नहीं है।
और शील के समान कोई उत्तम श्रृंगार नहीं है।

यहाँ पर हमें पता चलता है कि, दया के समान कोई उत्तम धर्म नहीं है, तो फिर हम क्यों व्यर्थ में रात्रिभोजन करके यह धर्म गंवायें।

करोति विरतिं धन्यो, यः सदा निशि भोजनात् ।
सोऽर्द्धं पुरुषायुष्कस्य, स्यादवश्यमुपोषितः ।।

– योगशास्त्र 3/69

अर्थात् जो भव्य आत्मा नित्य रात्रिभोजन का त्याग करते हैं, वे हमेशा धन्यवाद के पात्र हैं। रात्रिभोजन के त्यागी को आधी जिंदगी के उपवास का फल मिलता है।

कुछ तथ्य :

मच्छर रात्रि में ही क्यों काटते हैं, ऐसा कभी आपने सोचा है ? वजह है – ऊर्जा की कमी।

सूर्य अस्त होने पर अपने शरीर में रही हुई ऊर्जा शक्ति कम हो जाती है। ऊर्जा शक्ति की हानि से रात्रि में भोजन किया हुआ आहार किस तरह शक्तिदायक बनेंगा। ऊर्जा शक्ति कम होने से रात में किया हुआ आहार शरीर को नुकसानकारी होता है।

कोई उत्तम जोहरी जब कीमती हीरा खरीदता है, तब वह हीरे को दिन के प्राकृतिक प्रकाश में अनेक रीति से देखकर ही खरीदता है।

लाख पॉवरवाला बल्ब रहने पर भी कमल विकसित नहीं होता, उसे विकसित करने की ताकत तो सिर्फ सूर्य में ही है।

क्या ईसाई (क्रिश्चियन) लोग भी रात्रिभोजन का त्याग मानते है ?

प्रचलित ब्रेक फास्ट (Break Fast) शब्द से वे लोग भी रात्रि में भोजन का त्याग मानते हैं। Fast का अर्थ है उपवास, उन्हीं के बाइबल में लिखा है कि :–

Jesus had fasted for fourty days and nights (जीसस् क्राईस्ट ने 40 दिन और रात के उपवास किये थे।) **दिन और रात** के उपवास करके यही कहा कि, रात्रिभोजन नहीं करना चाहिए। यदि रात्रि में उपवास नहीं करोगे तो fast को break (तोड़ना) कैसे करोगे।

(To break the fast is called breakfast) उपवास को तोडना उनका ही नाम breakfast है।

breakfast शब्द रात्रिभोजन के त्याग को सूचित करता है। अत: विश्व की बहुधा जनता रात्रिभोजन के त्याग से सहमत है।

मांसाहारी पशु दिन को आराम करते है, रात को आहार की खोज में घूमते है। इसी से सिद्ध होता है कि, शाकाहारी पशु रात को आराम और दिन में भोजन करते है। यदि कोई ऐसा कहे कि, आजकल शाकाहारी पशु भी रात को खाते है। यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उनके मालिक उन्हें दिन में नहीं खिलाते और रात में ही भोजन करवाते है।

जंगल में रहने वाले गाय, हिरण आदि पशुओं को भी कभी रात्रिभोजन करते हुए नहीं देखा है। यदि कोई ऐसा कहें, रात में नहीं खाने से दूसरे दिन तक 14-15 घंटे का अंतर होता है। जब की सुबह और शाम के भोजन के बीच बहुत अंतर नहीं है। इस कारण रात्रिभोजन का त्याग वैज्ञानिक ढंगवाला नहीं है, तो वह सत्य बात के अज्ञात है, सुबह में खाने के बाद जितना परिश्रम किया जाता है, उससे बहुत कम परिश्रम रात में खाने के बाद किया जाता है।

व्यवहार की दृष्टि से:

कोई चुस्त श्रावक एक दिन ब्राह्मण के घर में मेहमान बनकर गया। उस श्रावक ने ब्राह्मण से कहा, मैं रात को भोजन नहीं करता हूँ, दिन को ही करूँगा। वह सुनकर ब्राह्मण ने उसे कहा, क्या रात में छोटे-मोटे जीव गिरते है?

श्रावक ने कहा, हां... तुम कहो तो मैं तुम्हारी स्त्री की साक्षी दिलाउं। लेकिन तुम्हें बीच में कुछ नहीं बोलना चाहिए।

ब्राह्मण को आश्चर्य हुआ, इसने तो मेरी पत्नी को कभी देखा भी नहीं है।

श्रावक ने ब्राह्मण की पत्नी से कहा, दीदी... मैं आपको एक बात पूछता हूँ कि, जब भी मैं रात को आचार मांगता हूँ तो, मना करते है। इसका क्या कारण ?

उस ब्राह्मणी ने कहा, क्या तुम्हें उतना भी नहीं मालूम की, रात को आचार की बोतल खोलने से उसके अंदर छोटे-मोटे जीव गिरते है और आचार बिगड़ जाता है।

श्रावक को खुशी हुई, वह दीदी की तारीफ करने लगा, इसी तरह व्यवहार में भी रात्रीभोजन का त्याग उत्तम है।

आरोग्य की दृष्टि से

शरीर के स्वाथ्य के लिए भी रात्रिभोजन का त्याग करना आवश्यक है। एक मजदूर पूरा दिन काम करके रात्रि में आराम करता है, उसी तरह दिन में दो-तीन बार भोजन करने के बाद शरीर के स्वाथ्य के लिए रात्रिभोजन त्याग करना चाहिए। रात्रिभोजन करने से पेट का बिगाड़, आँख, कान, नाक, मगज, दांत का बिगाड़, अजीर्ण इत्यादि पीड़ा उत्पन्न होती है।

महापाप

वैज्ञानिक दृष्टि से भी रात्रिभोजन सदा वर्ज्य है, क्योंकि सूर्य प्रकाशशील है। इसीलिए ही ज्ञान को दीपक की उपमा दी गई है।

वैज्ञानिकों का एक मत यह भी है कि सोने से 4 घंटे पूर्व ही भोजन कर लेना चाहिए। यह स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम है।

रात्रिभोजन का हमारे जैन दर्शन में निषेध बताया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सूर्य की रोशनी में नीले आकाश के रंग के सूक्ष्म जीव या तो कहीं छुप जाते हैं या उनकी उत्पत्ति ही नहीं होती है और स्पष्ट दिखाई देने के कारण हम बहुत सी हिंसा से बच जाते है। परन्तु रात्रि में कृत्रिम रोशनी में, उन्हें आकर्षण करने की आकर्षण शक्ति होती है। रात्रि में इन सूक्ष्म जीवों का प्रसार बढ जाता है तथा दृष्टिगोचर न होने के कारण अनायास ही वे जीव भोजन के साथ भक्षण कर लिए जाते है। वैज्ञानिकों के अनुसार – सूर्य की रोशनी में Infrared तथा Ultraviolet Rays पायी जाती है, जो कि X- Rays के समान पुद्गल को भेदकर जितने भी किटाणु होते है उन सबको नष्ट कर देती है।

वैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार एक और कारण यह भी है कि सूर्य की रोशनी में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है तथा कार्बन डाईआक्साइड (Co_2) की मात्रा कम होती है, जिससे भोजन आसानी से पच जाता है और वातावरण शुद्ध रहता है, जो स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। रात्रि में दूषित वातावरण में किए गए भोजन में ऐसा तत्त्व मिलता है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होता है।

सूर्य के प्रकाश में स्वाभाविक स्फूर्ति है और सूक्ष्म जंतुओं का अभाव है। प्रकृति स्वच्छ रहती है। प्रकाश ज्ञान का प्रतीक है, और अंधकार अज्ञान का प्रतीक है! रात्रि में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती है।

अंधकार में कीटाणु बहुत होते है। वे पुद्गल रात्रिभोजन करने वालों को असर करते है। उनकी बुद्धि भ्रष्ट होती है, श्रद्धा बिगड़ती है और जिसकी श्रद्धा बिगड़ी उनका संसार बढ जाता है। मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोटा कोटी सागरोपम है। इससे समझ सकेंगे की रात्रिभोजन को शास्त्रकारों ने महापाप बताया है, वह सत्य ही है।

10. माता-पिता उपकार

A. माता-पिता के चरण स्पर्श करना

बालको ! प्रात: जगने पर आठ नवकार और हाथ में सिद्धशिला की आकृति में तीर्थंकरों के भाव से दर्शन एवं आत्म चिंतन करने के बाद बिस्तर (पलंग) से नीचे उतर कर अपने सबसे निकट के उपकारी माता-पिता के चरणों को आदरपूर्वक स्पर्श करना चाहिए, उनको नमस्कार करना चाहिए और उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए। माता-पिता का अपने ऊपर अत्यन्त उपकार है।

उपकारी माता: जब से जीव माता के पेट में आता है, तब से उसका उपकार आरंभ हो जाता है क्योंकि माता को प्रत्येक बात का ध्यान रखना पडता है। खाने,पीने व चलने इत्यादि में पूरी सजगता रखनी पडती है, वरना पेट में रहा हुआ अपना जीव विकृति वाला हो जाता है। माता-अपने सुख, सुविधा, इच्छाओं का त्याग करती है, अनेक कष्ट सहन करके आपको जन्म देती है, लालन-पालन करती है, जिससे आपके दो हाथ, दो पैर, दो आँख, नाक, गाल, फेफडे, पेट, सिर तथा सुंदर मुख इत्यादि सुरक्षित रहते है। यह सब माता के रक्षण के कारण ही है।

पेट में रहे हुए बालक की रक्षा करती है माता।
जन्म होने के पश्चात् भी बडा करती है माता।
स्वयं गीले स्थान में सोकर, अपने संतान को
सूखे स्थान में सुलाती है माता।
बालक को स्तनपान करवा कर पोषण देती है माता।
अच्छे पवित्र संस्कार देती है माता।
औषधि इत्यादि का प्रबंध करती है माता।
भगवान के दर्शन के लिए ले जाती है माता।
गुरु को वंदन करवाने ले जाती है माता।
नवकार मंत्र सुनाती है-सिखाती है माता। अत: माता उपकारी है।

उपकारी पिता: पिताजी इन सभी बातों में सहायता करते है। व्यवहार धर्म का ज्ञान दिलवाते है पिता। सत्य बोलना, हितकारी बोलना, किसी को हानि हो ऐसा नहीं बोलना, किसी को लूटना नहीं। इन सबकी शिक्षा देते हैं पिता। ऐसे पिता का उपकार कैसे भूला जाए।

उपकार का बदला: अपने जन्म के समय प्रसूति की भयंकर असह्य वेदना सहन करके जन्म देने वाली माता तथा बहुत परिश्रम करके अपना पालन पोषण करने वाले पिताजी का उपकार महान है। ऐसे उपकार का बदला चुकाने के लिए शास्त्र में बताया गया है कि **1)** अपनी चमडी के जूते बनाकर पहनाएँ। **2)** देव बनकर पूरी जिंदगी माता-पिता को कंधों पर रखकर फिरें **3)** 32 भोजन तथा 33 पकवान आदि उत्तम

वस्तुएं खिलाएँ तब भी उनके उपकार का ऋण एक भव में नहीं चुकाया जा सकता।

अजैन ग्रंथ में भी बताया गया है कि सभी पवित्र नदियों में स्नान करने या तीर्थों की यात्रा करने से जो लाभ मिलता है, उससे भी अधिक लाभ माता-पिता की भक्ति से मिलता है। अत: श्रवणकुमार की तरह उन्हें तीर्थयात्रा व धर्म आराधना भली प्रकार करावे ताकि उनकी आत्मा को शांति मिले, उनकी सद्गति हो ऐसा करना चाहिए, तभी उनके महान् उपकारों का कुछ ऋण चुकाया जा सकता है। ऐसे तीर्थ स्वरूप माता-पिता के उपकारो का हमने कभी विचार किया है ?

बालकों ! तुम अभी तो छोटे हो अत: माँ-माँ कहते हो, किंतु बडे होने के बाद भी माता को छोडना मत। उनको दु:ख देना मत। यह बात तुम्हारे अकेले के लिए नहीं, किंतु बडों को भी समझने की आवश्यकता है।

व्यापार में कोई थोडी भी सहायता करता है, किसी व्यापारी से अच्छी पहचान करवाता है, कोई सौदा करवाता है, तो हम उसका उपकार मानकर उसका आभार व्यक्त करते है कि उसने हमें बहुत सहायता दी। इसी प्रकार अपनी माता के उपकार के भी दस व्यक्तियों के सन्मुख गुण गाने चाहिए।

प्रतिदिन ऐसा विचार करना चाहिए कि मेरी माता ने मेरे लिए कैसा कमाल किया है ? उसकी गोद में बैठकर मैं टट्टी-पिशाब करता था, गंदगी करता था, फिर भी मां ने मुझे थप्पड नहीं मारी, मुझे प्रेम से साफ किया, मेरे गंदे कपड़ों को धोए और मुझे प्रेम से स्तन-पान करवाया। मेरी माता के इन अनन्य उपकारों को मैं कभी भूलूंगा नहीं।

मेरी माता के मुझ पर अनन्य उपकार है। इनके ऋण को मैं कब चूका पाऊँगा। ऐसा सभी पुत्रों को विचार करना चाहिए। बोलो, क्या आपने ऐसा विचार किया कभी ?

माता यदि अशिक्षित हो, गँवार जैसी हो, फिर भी मेरी माँ है। ऐसा विचार अपने मन को एवं हृदय को द्रवित कर देना चाहिए, एवं अपना मस्तक उनके चरणों में झुक जाना चाहिए। नही तो अपनी होशीयारी, अपना ज्ञान, अपना धर्म निरर्थक है।

जिसने माता-पिता को प्रसन्नचित्त नहीं रखा, जिसने माता-पिता का हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त नहीं किया, उसकी बुद्धि का अभिमान एक दिन उसे डुबा देगा, उसकी सम्पत्ति उसे किसी दिन विपथगामी बना देगी। जैसी भी हो वह अपनी माता है, बस यह एक ही बात अपने लिए पर्याप्त है।

बात बात में माता-पिता की अवज्ञा करने वाले, माता-पिता को तुच्छ गिनने वाले उन्हें अपमानित करने वाले, बैठे बैठे तू क्या समझती है ? ऐसा कहने वालों को गहन विचार करने की आवश्यकता है।

मैं आपको अति प्रेमपूर्वक कहना चाहता हूँ कि माता-पिता के उपकारों को कभी हृदय से दूर मत करना। उन्हें सदैव स्मृति पटल पर रखना।

<u>धर्म का पहला सिद्धांत :</u> माता-पिता के उपकारों के प्रति कृतज्ञता रखना।

माता-पिता के उपकारों को समझना अत्यंत आवश्यक है। आज हम स्वयं को इतने होशियार मानने

लगे हैं कि हम माता–पिता के उपकारों को भूला बैठे है, ऊपर से उनकी उपेक्षा करते रहते है। उन्होंने अपने लिए बहुत किया है।

हे बालकों ! आज जो कुछ भी तुम हो, वह तुम्हारे माता–पिता के कारण ही हो।

तुमने तो गर्भ में रहे रहे ही लाते मारी होगी, उसे दुःखी किया होगा, जन्म लेने के बाद उसकी गोद को गंदा किया होगा, मल और मूत्र से उसे गंदा किया होगा, पूरे दिन और रात रो–रो कर उसे हैरान–परेशान करते रहे होंगे, उसे सोने भी नहीं दिया होगा.. उस समय तुमसे परेशान होकर, तुम्हारी छोटीसी अनाथ अवस्था में उसने तुम्हारी गरदन नहीं मरोडी यह क्या कम है ?

कल्पना करो कि तुम्हारे जन्म के साथ ही यदि तुम्हारी माता तुम्हारी परित्याग करके तुम्हें असहाय स्थिति में छोडकर चली गई होती तो क्या तुम इस दुनिया में होते ?

माता–पिता ने हमारे लिए क्या किया ? ऐसा प्रश्न करने वाला युवक मानव कहलाने का अधिकारी नहीं है।

उनके उपकारों को कोई भूल सकता है ?

इन उपकारों के बदले में हमने क्या किया ?

माता–पिता का प्रभाव:– प्रतिदिन माँ के चरणों में प्रणाम करने वाला प्रभाशंकर पटणी अपनी माता की मृत्यु हो जाने के पश्चात् रोते–रोते बोलें कि अब मुझे मेरा **परभा** ऐसे मीठे शब्द कौन कहेगा ?

* भीष्म पितामह ने अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया।

* एक नवयुवक को लग्न मंडप में पिता की घातक बीमारी के समाचार मिलें, तो उसने तुरंत प्रतिज्ञा की, कि पिताजी जिंदे है तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करुंगा।

* श्री जंबूविजयजी महाराज साहब माताजी महाराज एवं पिता महाराज की याद में 74 वर्ष की उम्र में भी अट्ठम तप करते है।

* राजस्थान की दो पुत्र वधुओं ने भोग सुखों को त्याग करके पागल ससुर की सेवा की।

* आचार्य श्री हेमचंद्र सूरीश्वरजी म.सा. ने पाहिणी माता को दीक्षा दी, अंतिम निर्यामणा करवाकर उनके निमित्त सवा करोड नवकार का जाप एवं साढे तीन करोड नये श्लोक सर्जन करने का संकल्प किया।

* श्री रामचंद्रजी ने पिता की प्रतिज्ञा को पूर्ण करवाने के लिए वनवास स्वीकार किया।

* कुणाल ने अपनी आँख फोडकर अपने पिता की आज्ञा का पालन किया।

* श्रवणकुमार ने अपने माता–पिता को कॉवर (कावड) में बिठाकर तीर्थ यात्रा करवाई।

* एक युवक ने अपनी 55 वर्ष की माता की इच्छापूर्ति के लिए 55 लाख रुपए पालीताणा में खर्च किए।

* केरल की संताने प्रथम माता–पिता को प्रणाम करती है। तत्पश्चात् ही स्कूल कॉलेज इत्यादि काम पर जाती है।

जंगल में रहने वाली आदिवासी प्रजा में भी विनय का महत्त्व है कि सुबह सुबह उठकर पुत्र अपने पिता को रॉम-रॉम कहकर मिलता है, पिता भी पुत्र को इसी शब्दों से प्रत्युत्तर देते हैं। पुत्रवधु भी सुबह उठकर श्वसुर-जेठ वगैरह वडिलों को नीचे झुककर अपने ओढनी के एक पल्ले को जमीन अडाकर बावझी आझराम बोलकर मिलती है, प्रत्युत्तर में वडील झवारा शब्द बोलते है।

B. अनाथाश्रम की मुलाकात लेना

माता ने तुम्हारे लिये क्या किया ? यह देखना हो तो, कभी महिने में एक बार किसी अनाथाश्रम में भी अवश्य जाना। वहाँ तुम्हारे जैसे ही दो हाथ, दो पैर वाले बालकों को देखना। उनकी माता कौन है ? यह उनको ज्ञात नहीं। इनका पिता कौन है, यह भी उनको ज्ञात नहीं । ऐसे अनाथ बालकों को लाचारी से पलते हुए देखना। तब तुम्हें मालूम पडेगा कि तुम्हारी माता ने तुम्हारे लिए क्या किया ? तुम्हारी माता ने तुम्हें जन्म के साथ ही तुम्हारा परित्याग करके अनाथाश्रम में नहीं भेजा, यह उसका तुम पर अनन्य उपकार नहीं है क्या ?

अनाथाश्रम वालों की विनती से एक साधु-महात्मा अनाथ बालको को मांगलिक सुनाने एवं आशीर्वाद देने के लिए अनाथाश्रम में गए, वहाँ उन्होंने बालकों की जो स्थिति देखी, वह सुनने पर अपनी भी आँखों से अश्रुधारा बहें बिना नहीं रहेगी। वे साधु-महात्मा अनाथाश्रम के बालकों के पास जाकर वापस उपाश्रय में लौटे, जहाँ उनके लिए गोचरी आ गई थी, फिर भी उन्होंने कुछ भी नहीं खाया। वे कुछ खा नही सके, क्योंकि अनाथाश्रम के बच्चों का बुरा हाल देखकर, वे बहुत दुःखी हो गए थे।

छोटे-छोटे पालनों में एक-दो दिन के जन्मे हुए बालक लाचार स्थिति में सोए हुए थे। उनकी माता उनको जन्म देकर, वे कहीं गैर रीति से जन्में होंगे, जिसके कारण समाज के भय से अपने जन्मे हुए बालक को रास्ते में अथवा ट्रेन की पटरी पर छोड कर चली गई होगी। ऐसी दयनीय स्थिति में उन बालकों को देखकर उन साधु-महात्मा का हृदय द्रवित हो गया, जिससे कुछ भी खाने पीने का मन नहीं हुआ।

एक माता ने उसके एक ही दिन के जन्मे हुए बालक को ट्रेन की पटरी पर छोड दिया था और अपने हृदय पर पत्थर रखकर उसकी माता चली गई थी। रात्रि को जंगली चूहों ने ताजे जन्मे हुए उस बालक का नाक नोच डाला था। मानव सेवा संघ के कार्यकर्ताओं को इसकी सूचना प्राप्त होने पर वे दौडे और उस बालक को अनाथाश्रम में ले आए। यह घटना उन महात्मा को बतायी गयी। बेचारे का कोमल नाक चूहों की दाढों से चबाया जा चुका था तथा वह आँखे मूँदकर अनाथाश्रम के पालने में पडा हुआ था। ऐसे

दयापात्र बालक की दुर्दशा देखकर आप ही कहो, कि भोजन की रुचि कैसे हो सकती है ?

भोजन के समय आश्रम की संचालिका महिलाएँ छोटे–छोटे बच्चों को प्रेम से भोजन करवाती है, फिर भी माँ की पूर्ति नहीं हो पाती।

एक स्वयं की माता बालक को खिलाए और एक अन्य माता दूसरों के बालक को खिलाए–इन दो के बीच भिन्नता वहाँ देखने को मिलती है।

तुम्हारे जन्म के पश्चात् तुम्हें खाने–पीने की कोई जानकारी नहीं थी, तब तुम्हारी माता ने कौर (कवल) बना बनाकर तुम्हारे मुख में प्रेम से रखे थे जिसके कारण ही तुम्हारे शरीर का गठन हुआ है। ऐसा सब कुछ होने पर भी हमको जन्म दिया तथा पालन पोषण करके हमें बडा किया, इसमें हमारी माँ ने क्या उपकार किया ? ऐसा कहने का साहस नहीं करना चाहिए।

ये बातें पढने के पश्चात ऐसे शब्द मुँह में से कभी भी मत निकालना। ऐसी उपकारी माता का मन किसी प्रकार से दुःखी न हो एवं व्यथित न हो इस प्रकार उत्तम पुरुष को आचरण करना चाहिए।

C. उपकार को भूलना नहीं

बालकों ! तुम सभी भाग्यशाली हो, क्योंकि तुमने संस्कारी माता की कुक्षि से जन्म लिया है और जन्म के बाद तुम्हें कोई भी समझ नहीं थी, उस समय तुम्हारी माता ने ही पहला नवकार मंत्र तुम्हारे कान में सुनाया था, संसार के सर्वश्रेष्ठ मंत्र सुनाने वाली एवं सिखाने वाली तुम्हारी माता ही है। अरे ! तुमने ठीक से चलना भी नहीं सीखा था तब तुम्हारी ऊँगली पकडकर तुम्हें धीरे धीरे मंदिर में ले जाकर भगवान के दर्शन तुम्हारी माता ने ही करवाएं थे। उस माता और उसके उपकारों को कैसे भूल सकते हो ? अतः आप उनके सभी उपकारों को स्मरण करते रहना एवं उनके हृदय को कोई आघात न लगे, उनका मन दुःखी न हो इसकी सदा सावधानी रखना। उसके लिए जो मौज शौक छोडने पडें तो छोडना। किसी वस्तु का त्याग करना पडे तो त्याग कर देना। खाना या खेलना भूला जाना किंतु तुम्हें जन्म देने वाली माता के उपकारों को कभी मत भूलना। उनके ऋण में से मुक्त होने के लिए उनके सामने कभी मत बोलना। तुम्हारा आचरण भी उनको प्रसन्न रखे ऐसा रखना। बडे होने पर एक से दो हो (विवाह करने पर) तब भी माता–पिता से अलग रहने का विचार मत करना क्योंकि **पत्नी पसंदगी से मिलने वाली वस्तु है, जबकि माता–पिता पुण्य से मिलते है।** पसंदगी से मिलने वाली वस्तु के लिए पुण्य से मिली हुई वस्तु को ठुकराना मत, वरना घर का नाम होता है मातृछाया, पितृछाया फिर भी **माता–पिता को खडे रहने के लिए भी न मिले छाया।** तुम पैसे वाले भी हो जाओ, वकील, डाक्टर इत्यादि बन जाओ, तब भी उनकी सेवा करने में सदा तत्पर रहना। ऐसे आचरण करने वाला पुत्र सुपुत्र कहलाने योग्य है। तथा ऐसे सुपुत्र माता–पिता की सभी इच्छाओं की पूर्ति अवश्य करते हैं।

1. आशुतोष मुखर्जी ने अपनी माता की अनिच्छा जानने के पश्चात् तुरंत ही अपने अफसर लॉर्ड कर्जन को उत्तर देते हुए कहा कि क्षमा करना साहब, विशेष अध्ययन के लिए मुझे विदेश भेजने की आपकी इच्छा मैं पूरी नहीं कर सकता, क्योंकि मेरी माता के अतिरिक्त मैं किसी अन्य की इच्छा नहीं मानता हूँ।

2. देखो उन आर्यरक्षित को– 14 विद्याओं के पारंगत बनने के बाद भी माता–पिता की इच्छा से दृष्टिवाद पढने के लिए संयम जीवन के कठोर मार्ग पर चल पडे थे। उनके जैसी मातृ भक्ति हम में कब आएगी ?

माता की महिमा :-

गौरव दृष्टि से 10 उपाध्याय= एक आचार्य, 100 आचार्य = एक पिता, हजार पिता = एक माता होती है इसीलिए शब्द में पहले माँ शब्द बोला जाता है। जैसे कि माता–पिता, माँ–बाप, जननी–जनक, आई–वडील (मराठी में)।

* उपनिषद् में माता–पिता को देव तुल्य माने गए है मातृदेवो भव, पितृदेवो भव

* पारसी धर्म को संतान के लिए आज्ञा है, कि वह माता–पिता को तीन बार पूछे कि आपकी क्या आज्ञा है ? कहिए, मैं उस आज्ञा का पालन करूं।

* मोहम्मद पैगंबर ने भी कहा है, कि माता के चरणों में बेहिस्त (स्वर्ग) है।

* चीनी धर्म में आदेश–माता–पिता का भरण पोषण करना ही मात्र सेवा नहीं है, क्योंकि भरण पोषण तो हम कुत्ते आदि पशु–पक्षियों का भी करते हैं। परंतु माता–पिता की तो भक्तिपूर्वक सेवा की जानी चाहिए। इसीलिए कहा है कि जिसने माता–पिता की सेवा की, उसके लिए स्वर्ग का तोरण द्वार खुल गया।

* माता क्षमा–करुणा–धैर्य की त्रिमूर्ति है। इसीलिए कहा है, कि "Mother's Love Knows no Bound" अर्थात् माता–के प्रेम के बराबर किसी का प्रेम नहीं है। माता वात्सल्य से भरी हुई होती है। अंग्रेजी में भी कहाँ है कि Father is the Head of the House, Mother is the Heart of the House अर्थात् पिता घर के मस्तक जैसे हैं, तो माता घर के हृदय जैसी होती है।

जो मस्ती आँखों में है, वह सुरालय में नहीं होती,
अमीरी किसी दिल के महालय में नहीं होती.
शीतलता पाने के लिए दौडता कहाँ है मानवी
जो माता की गोद में है, वह हिमालय मे नहीं होती।।

11. जीवदया - जयणा

A. स्वयोग्य पर्याप्तियाँ

एकेन्द्रिय – इन्हें आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियाँ होती है।

विकलेन्द्रिय (बेई–तेई–चउ) असंज्ञि पंचेन्द्रिय – इन्हें मन सिवाय की पाँच पर्याप्तियाँ होती है।

संज्ञि पंचेन्द्रिय (गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, देव, नारक) – इन्हें छः पर्याप्तियाँ होती है।

कोई भी जीव कम से कम तीन पर्याप्तियाँ पूरी किये बिना नहीं मरता है। परंतु आगे की स्वयोग्य पर्याप्तियाँ यदि पूर्ण करके मरें तो जीव पर्याप्त कहलाता है। यदि पूरी किये बिना मरे तो अपर्याप्त कहलाता है। जैसे कि पृथ्वी के जीव की स्वयोग्य पर्याप्ति चार है। यदि वह चारों पर्याप्तियाँ पूर्ण करके मरे तो पर्याप्त और चौथी अधूरी छोड़कर मरे तो अपर्याप्त कहलाता है।

मनुष्य से लेकर वनस्पति वगैरह एकेन्द्रिय में आत्मतत्त्व की सिद्धि

1. मनुष्य में से आत्मा के चले जाने के बाद, उसे ग्लूकोस के बोतल या ऑक्सीजन आदि नहीं चढ़ते। क्यों कि आत्मा हो तब तक ही (यदि शरीर कोमा में चला जाए तो भी) ब्लड सर्क्युलेशन होता है। इसलिए आत्मा है यह सिद्ध होता है।
2. पशु, पक्षी, चींटी, मकोड़ा, मच्छर वगैरह में भी आत्मा है तब तक हलन–चलन, खाने या डंखने वगैरह की क्रिया करते हुए देखे जाते हैं।
3. **(अ) पृथ्वी** : पत्थर और धातुओं की खान में जो वृद्धि होती है, वह जीव बिना असंभवित है।

   (आ) पानी : कुआँ वगैरह में पानी ताजा रहता है और नया–नया आता रहता है जिससे पानी में जीव की सिद्धि होती है।

   (इ) अग्नि : तेल, हवा, लकड़े आदि आहार से अग्नि जीवंत रहती है...अन्यथा बुझ जाती है। इससे अग्नि में जीव की सिद्धि होती है।

   (ई) वनस्पति – जीव हो तब तक सब्जी, फल वगैरह में ताजापन दिखता है।

याद रखो : पृथ्वी, पानी वगैरह में जो जीव है वे तुम्हारे जैसे ही है और वे तुम्हारे माता–पिता, भाई–बहन, पति–पत्नी वगैरह बन चूके हैं। अब यदि तुम इन जीवों की जयणा नहीं पालोगे तो तुम्हें भी पृथ्वी, पानी वगैरह एकेन्द्रिय के भव में जाना पड़ेगा।

प्रश्न: पृथ्वीकाय आदि जीवों को स्पर्श से वेदना होती है, वह क्यों नहीं दिखती ?

उत्तर: गौतम स्वामी, महावीर स्वामी को आचारांग सूत्र में यह प्रश्न पूछते हैं। प्रभु जवाब देते हैं –कि किसी मनुष्य के हाथ–पैर काट दिये जायें, आँख और मुँह पर पट्टा बांध दिया जायें। फिर उस व्यक्ति पर

लकड़ी से खूब प्रहार किया जाय तो वह मनुष्य अत्यंत वेदना से पीड़ित होता है। लेकिन उसे व्यक्त नहीं कर सकता। उसी प्रकार पृथ्वी, पानी वगैरह के जीवों को उससे कई गुणा अधिक वेदना अपने स्पर्श मात्र से होती है। लेकिन व्यक्त करने का साधन न होने से वे उन्हें व्यक्त नहीं कर सकते।

B. जीवन में आचरने योग्य जयणा की समझ

हम जैसे पैसों को संभालकर उपयोग में लेते हैं, जितने चाहिए उसी प्रमाण में व्यय करते हैं तो पैसों की संभाल या जयणा की गई कहलाती है। तो इस प्रकार हमें स्थावर जीवों की भी जयणा करनी चाहिए।

चलते फिरते जीवों की रक्षा करने का तो सब धर्मों में कहा गया है परंतु जैन धर्म का जीव-विज्ञान अलौकिक है। इसके प्ररूपक केवलज्ञानी-वीतराग प्रभु हैं। उन्होंने मनुष्य में जैसी आत्मा है वैसी ही आत्मा पशु, पक्षी, मक्खी, चींटी, मच्छर, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति वगैरह 563 जीव भेदों में बतायी है।

जयणा का उद्देश्य

जैसे कपड़े का बड़ा व्यापारी सबको कपड़े पहुँचाता है, फिर भी सबको कपड़े पहुँचाने का अभिमान अथवा उपकार करने का गर्व नहीं करता, क्योंकि उसका उद्देश्य लोगों को कपड़े पहुँचाने का नहीं लेकिन पैसा कमाने का ही होता है। उसी प्रकार हम जीवों को बचाएँ, जीवों की जयणा का पालन करें तो हम जीवों पर उपकार नहीं करते बल्कि अपने ही अहिंसा गुण की सिद्धि के लिए करते हैं।

जयणा का फल

जयणा का पालन करने से रोग वगैरह नहीं होते हैं। सुख मिलता है, शाता मिलती है, आरोग्य मिलता है, समृद्धि मिलती है। आत्मभूमि के कोमल बनने से गुणप्राप्ति की योग्यता आती है, जिससे क्रमशः: आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति सरलता से होती है।

प्रश्न: स्थावर में जीव प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखते, इसलिए उन्हें बचाने का उत्साह हमें किस प्रकार जगाना चाहिए?

उत्तर: जिस प्रकार जब हम क्रिकेट प्रत्यक्ष नहीं देखते हैं, फिर भी कॉमेन्ट्री सुनकर उसे सत्य मानकर आनंद लेते हैं, उसी प्रकार जिनेश्वर भगवंतों ने इन जीवों को एवं उनकी वेदना को साक्षात् देखी है और उसकी कॉमेन्ट्री दी है। संसार के चलते-फिरते मनुष्य पर विश्वास रखने वाले, हमें यदि परमात्मा पर विश्वास आ जाए तो हमारे जीवन में स्थावर जीवों की भी जयणा का वेग आ सकता है। जयणा को प्राधान्य देकर हम प्रत्येक कार्य कर सकते हैं। बाकी भगवान तो कहते हैं कि 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' यदि तुम्हें दुःख पसंद नहीं है तो किसी को भी दुःख हो, वैसी प्रवृत्ति भी नहीं करनी चाहिए।

C. जयणा के स्थान

1. **पृथ्वीकाय** : (माटी आदि) सभी प्रकार की मिट्टी, पत्थर, नमक, सोड़ा (खार) खान में से निकलने वाले कोयले, रत्न, चाँदी, सोना वगैरह सर्व धातु पृथ्वीकाय के प्रकार हैं।

नियम :-

अ) ताजी खोदी हुई मिट्टी (सचित्त) पर नहीं चलना लेकिन पास में जगह हो वहाँ से चलना।

आ) सोना, चाँदी, हीरा, मोती, रत्न वगैरह के आभूषण पृथ्वीकाय के शरीर (मुर्दे) हैं। इसलिए उनका जरूरत से ज्यादा संग्रह नहीं करना, मोह नहीं रखना, हो सके उतना त्याग करना।

2. **अप्‌काय (पानी):** सभी प्रकार के पानी, ओस, बादल का पानी, हरी वनस्पति पर रहा हुआ पानी, बर्फ, ओले वगैरह अप्‌काय (पानी के जीव) हैं।

नियम : -

अ) फ्रिज का पानी नहीं पीना, बर्फ का पानी नहीं पीना एवं बर्फ नहीं वापरना।

आ) पानी नल में से बाल्टी में सीधा ऊपर से गिरे तो इन जीवों को आघात होता है। इसलिए बाल्टी को नल से बहुत नीचे नहीं रखना। जिससे पानी फोर्स से नीचे न गिरे।

इ) गीजर का पानी उपयोग में नहीं लेना।

ई) कपड़े धोने की मशीन में सर्वत्र पानी छानने का और संखारे का विवेक रखना।

उ) पाँच तिथि (महीने की) तथा वर्ष की छः अट्ठाई में कपड़े नहीं धोना।हमेशा नहाने वगैरह के लिए ज्यादा पानी नहीं वापरना और साबुन का उपयोग शक्य हो तो नहीं करना।

ऊ) बार-बार हाथ, पैर, मुँह नहीं धोना।

पानी छानने की विधि

सुबह में उठकर रसोई घर तथा पूरे घर का बासी कचरा निकालकर उसे सूखी जगह पर परठना (डालना)। बर्तन को बराबर देखकर, उसमें जीव नहीं है, यह निर्णय करने के बाद उसमें घड़े का बासी पानी डालना। फिर घड़े पर गरणा रखकर उसमें थोड़ा पानी डालकर घड़े के पानी को मात्र हेलाकर उसे बाहर निकालना। पुनः पानी छानकर घड़े में लेना और कपड़े अथवा ब्रश से घड़ा धो लेना फिर जहाँ घड़ा रखने की जगह हो, वह बराबर साफ कर लेना, वरना चिकनापन जम जाय तो उसमें निगोद की उत्पत्ति हो जाती है, घड़े के अंदर भी चीकाश अथवा लील-फुग न हो उसका ध्यान रखना। घड़े को स्थान पर रखकर गरणा रखकर पानी भरना। इस प्रकार पूरा पानी छानने के बाद एक बाल्टी में थोड़ा पानी लेकर उसमें गरणे को डुबाकर निकाल लेना और पानी को पानी के रास्ते जाने देना और गरणे को ऐसे ही सुखा देना। (निचोड़ना नहीं) शाम को साबुन लगाकर धोया जा सकता है, गरणा मैला नहीं होने देना।

नोट : संखारे का पानी गटर में फेंकने से विराधना होती है। इसलिए एक अलग कोठी में अलगण पानी रखकर, उसमें संखारा डालना। दूसरे दिन वह पानी छानकर उपयोग में ले लेना और नया ताजा पानी कोठी में भरकर उसमें संखारा डालना। इस तरह रोज करने से संखारे के जीवों को बचाया जा सकता है।

खास ध्यान रखें : छाने हुए पानी में अपने हाथ अथवा झूठे ग्लास नहीं डालें। पानी लेने के लिए लंबी डंडीवाले ग्लास का उपयोग करें। पीने के पानी में झूठे ग्लास डालने से सम्पूर्ण घड़े में संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होती है। ऐसे पानी का उपयोग करने से बहुत विराधना होती है।

इसलिए पानी कम ढ़ोलना और यदि ढ़ोलना ही पड़े तो पानी छानकर संखारे की जयणा करने से प्रतिबूंद में 36450 त्रस जीवों को अभयदान दिया जा सकता है।

आँख में मिर्ची डालने से जो वेदना होती है, उससे कई गुणा अधिक वेदना पानी के जीवों को साबुन रगड़ने से होती है।

3. **तेउकाय (अग्नि)** : सर्व प्रकार की अग्नि और इलेक्ट्रिसिटी शस्त्र कहलाता है। इसके सम्पर्क में आने वाले सभी का कच्चरघाण निकल जाता है। अग्नि से छः (छओ) काय की विराधन होती है।

इलेक्ट्रिसिटी के उपयोग में सावधानी

जहाँ पानी का वेगपूर्वक प्रवाह बहता हो, वहाँ विद्युत उत्पन्न करने के साधन (मशीन वगैरह) में मछलियाँ वगैरह कट जाती है और उसके कारण खून की नदी बहने लगती है। तुम्हारे एक स्वीच का कनेक्शन पानी के प्रवाह तक है, वह मत भूलना। हजारों और लाखों वोल्ट के विद्युत के साथ भी तुम्हारे स्वीच का वाया-वाया संबंध है, इसलिए किसी भी इलेक्ट्रिक वस्तु-साधन का उपयोग करने पर सर्व जीवों की विराधना में भागीदार बनना पड़ता है, इसलिए जितनी हो सके उतनी जयणा रखने के लिए प्रयत्नशील बनें।

गैस की पाईपलाईन का भी सब गैस के साथ में सम्बन्ध होने से बारम्बार गैस सुलगाना नहीं। जमीन पर सीधा गरम टोप नहीं रखना लेकिन स्टैंड पर रखना। सब चीजों को ढ़ककर रखना, जिससे जीव उस में गिरकर न मरे।

नियम :

अ) बार-बार स्वीच को चालू-बंद निरर्थक नहीं करना।

ब) हो सके वहाँ तक इलेक्ट्रिक के नये साधनों को घर में नहीं बसाना और लाने की संमति भी नहीं देना, साधनों की प्रशंसा भी नहीं करनी।

स) बार-बार गैस चालू नहीं करना।

4. **वायुकाय (हवा) :-** सभी प्रकार की हवा, ए.सी., पंखे की हवा, तूफान, आँधी वगैरह में वायुकाय के जीव है। इसलिए हो सके उतनी जयणा रखना।

एकेन्द्रिय जीवों का स्वरुप

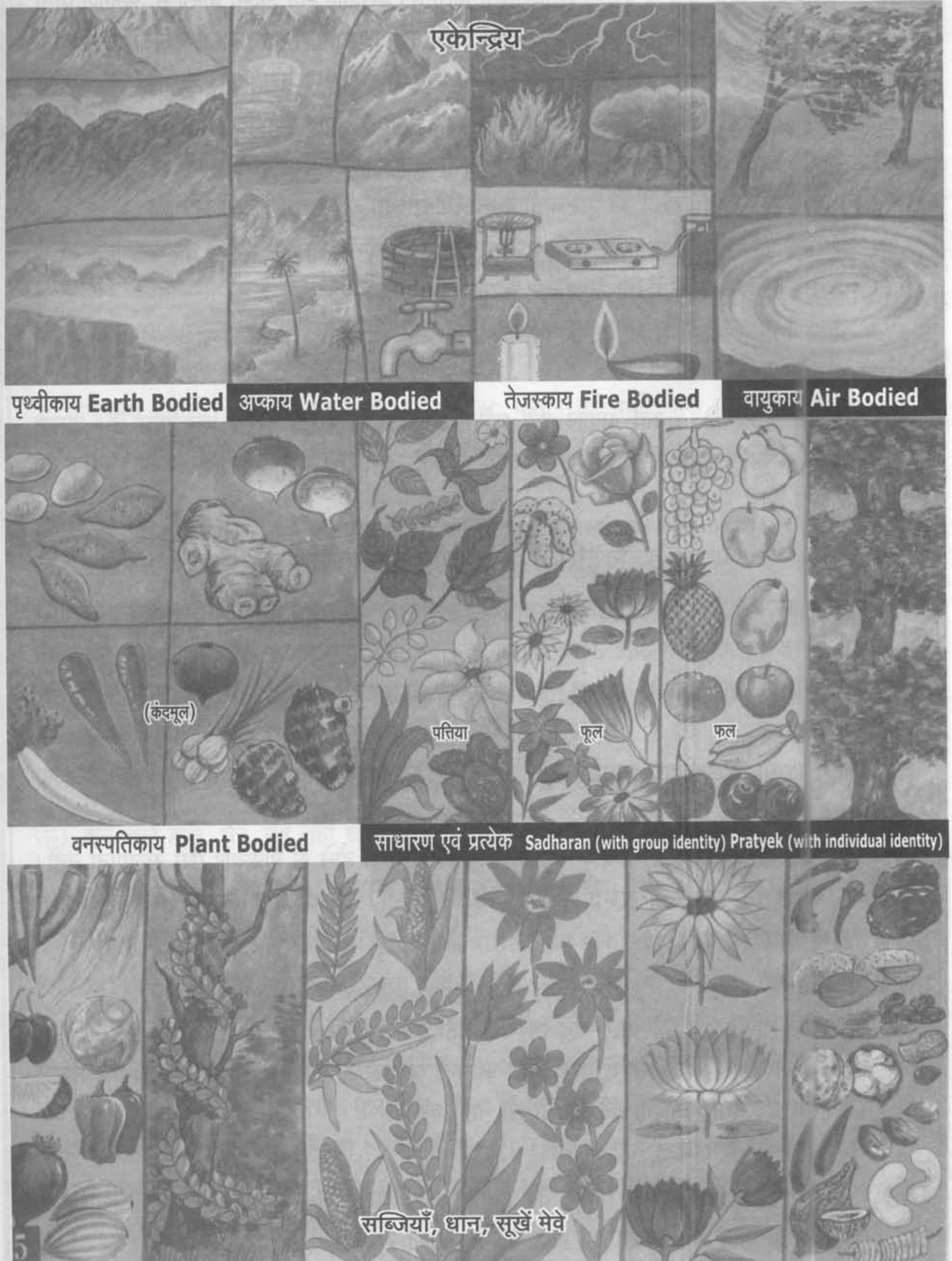

नियम :

अ) पंखा बार–बार नहीं करना।

ब) कपड़े सुखाते समय ज्यादा नहीं झटकना।

स) सूखे हुए कपड़ों को तुरंत उठा लेना क्योंकि वस्त्रों के फड़कने से वायुकाय के जीवों की विराधना होती है।

द) पर्दे वगैरह बांधकर नहीं रखना, झूले में नहीं बैठना।

5. वनस्पतिकाय :– इसके दो प्रकार हैं। प्रत्येक और साधारण। कोई भी वृक्ष प्रत्येक हो या साधारण, उगते समय (कोंपल अवस्था में) तो अनंतकाय ही होते हैं। फिर यदि प्रत्येक की जाति हो तो वृक्ष का मुख्य जीव रहता है और दूसरे सब जीव मर जाते हैं। प्रत्येक वनस्पतिकाय के सात अंगों में अलग–अलग जीव होते हैं। उन सात अंगों के नाम फल, फूल, छाल, काष्ठ, मूल, पत्ते और बीज।

नियम :

अ) अनंतकाय 32 हैं, उनका त्याग करना।

ब) बाग-बगीचे में नहीं घूमना, घास ऊपर नहीं चलना।

स) वृक्ष के पत्ते या फल नहीं तोड़ना, पेड़ को हाथ नहीं लगाना।

द) सब्जी–मार्केट में हरी वनस्पति की बहुत उथल–पुथल नहीं करना।

इ) तिथि के दिन हरी वनस्पति का त्याग करना।

बीजवाले फलों को सुधारने की समझ

जिन फलों मे और सब्जियों में बीज मध्य–भाग में हो, उन नींबू वगैरह को मात्र ऊपर–ऊपर से पाव इंच ही चाकू लगाना, फिर दोनों तरफ से दोनों हाथ फिराने से बीज कटते नहीं है। बच जाते हैं। दूधी एवं परवल में भी ऊपर से ही चीरकर अंदर के बीज को बचा सकते हैं।

D. सचित्त-अचित्त की समझ

सचित्त : जीव सहित वस्तु

अचित्त : ऐसी वस्तु जिसमें से जीव निकल गया हो। सफरजन=सेब वगैरह बीज वाले फलों को सुधारने के 48 मिनिट पश्चात् अचित्त का व्यवहार होता है।

* एकाशना वगैरह तपश्चर्या में सचित्त वस्तु का उपयोग नहीं किया जा सकता।

किसी वस्तु में डाला हुआ नमक यदि पिघल जाय तो चूल्हे पर रखे बिना ही 48 मिनिट में अचित्त हो जाता है। यदि नहीं पिघले तो सचित्त ही रहता है। जैसे की सींगदाणे की सूखी चटनी में डाला हुआ कच्चा नमक।

* आखा जीरा सचित्त है। नमकीन, पापड़ी, वेफर वगैरह में ऊपर से **कच्चा नमक डाला हो तो**

पंचेन्द्रिय जीवों तथा चार गति का स्वरुप

बेइन्द्रिय जीव Two Sensed Beings

तेइन्द्रिय जीव Three Sensed Beings

चउरेन्द्रिय जीव Four Sensed Beings

तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव Five Sensed Beings (Tiryanch)

जलचर Aquatic Animals

स्थलचर Animals of the Land

खेचर Birds

देव गति

मनुष्य गति

नरक गति

एकासना वगैरह में उपयोग में नहीं लिया जा सकता। साधु-साध्वी भगवंत को भी नहीं वोहराया जा सकता।

स्थावर जीवों की अचित्तता

प्रश्न: स्थावर वस्तु में सचित्त-अचित्तता समझाओ ?

उत्तर: स्थावर वस्तु जब तक जीव सहित हो तब तक सचित्त है, फिर अचित्त हो जाती है।

प्रश्न: स्थावर वस्तु अचित्त किस तरह होती है ?

उत्तर: तीन प्रकार के शस्त्र-संयोग से वस्तु अचित्त होती है।

(1) स्वकाय शस्त्र : एक मिट्टी दूसरे प्रकार की मिट्टी के लिए, भिन्न-भिन्न कुएं के पानी परस्पर मिलने पर, कुआँ तथा नल का पानी मिश्र होने पर; इसी प्रकार गैस व चूल्हे की अग्नि परस्पर मिलने से एवं अलग-अलग वायु, अलग-अलग वनस्पति परस्पर मिश्रित होने पर एक-दूसरे के लिए शस्त्र बनते हैं अर्थात् एक-दूसरे के घातक बनते हैं। जीवों के मर जाने से वस्तु अचित्त बनती है। लेकिन सम्पूर्णतया अचित्त नहीं बनती है। इसलिए विवेकी सज्जनों के लिए ऐसा मिश्रण करना उचित नहीं है और करने से दोष लगता है।

(2) परकाय शस्त्र : एक काय का दूसरे काय के साथ मिश्रण होने से अचित्त होता है। जैसे पानी का अग्नि के साथ संयोग होने से पानी अचित्त बनता है।

(3) उभयकाय शस्त्र : दो जाति के मिश्रित पानी को चूल्हे पर चढ़ाना। इसमें पानी परस्पर एवं अग्नि से अचित्त बनता है।

E. एकेन्द्रिय के 22 भेद

प्रश्न: पानी उबालकर पीना चाहिए इस प्रकार कहा है लेकिन उबालने से तो पानी के जीव मरते हैं?

उत्तर: पानी में प्रति समय जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। कच्चे पानी में यह क्रिया सतत् (निरंतर) चालू ही रहती है। पानी को उबालने से एक बार तो जीव मर जाते हैं। फिर उसके कालानुसार निश्चित समय तक पानी में जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, वह पानी अचित्त रहता है। इसलिए पानी उबालकर पीना चाहिए तथा परिणाम में क्रूरता भी नहीं आती।

पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु और साधारण वनस्पतिकाय। इन पाँच के 4-4 भेद होते हैं।

1. सूक्ष्म पर्याप्त 2. बादर पर्याप्त 3. सूक्ष्म अपर्याप्त 4. बादर अपर्याप्त 5X4=20 भेद

और प्रत्येक वनस्पति में मात्र (1) बादर पर्याप्त (2) बादर अपर्याप्त ये 2 भेद ही हैं, 20+2=22 भेद।

* एकेन्द्रिय में पृथ्वी आदि के जो कोई भी उदाहरण दिये गये हैं, वे सब बादर-पर्याप्त के ही जानना।

F. बेइन्द्रिय

शंख, इयल (लट), जोंक, चंदनक, भूनाग (केंचुए), कृमि, पोरा वगैरह। 22 अभक्ष्य में लगभग

सभी में असंख्य बेइन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होने से वे अभक्ष्य बनते हैं।

नियम :

अ) मधु (शहद), मक्खन, शराब और मांस, ये चार महाविगई है, इसलिए इनका सर्वदा त्याग करना।

ब) हिम–बर्फ वगैरह का त्याग करना।

स) मेथीवाले सभी आचार तथा शास्त्रीय विधि से नहीं बनाए हुए हो, वैसे सभी आचारों का दूसरे दिन त्याग करना।

द) कच्चे दूध, दही, छाछ, द्विदल (कठोल) के साथ नहीं वापरना।

इ) रात्रि भोजन का तथा बहुबीज का त्याग करना। हरे और सूखे अंजीर, बैगन, खसखस, राजगरा वगैरह बहुबीज हैं।

इ) ब्रेड वगैरह वासी चीजें, काल हो चुका आटा, मिठाई, खाखरा, नमकीन वगैरह अभक्ष्य है। उनमें वैसे ही वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के बेइन्द्रिय जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए नहीं वापरना।

बाईस (22) अभक्ष्य वापरने से होने वाले नुकसान :

बाईस अभक्ष्य आरोग्य नाशक, सत्त्वनाशक एवं बुद्धि नाशक है। इनसे त्रस और स्थावर जीवों का संहार होता है। तामसी और क्रूर प्रकृति उत्पन्न होती है।

G. तेइन्द्रिय :

जूं, चींटी, ईयल (गेहूँ में पैदा होने वाले कीड़े) कानखजुरा, मकोड़ा, उदेहि (दीमक), धान्य के कीड़े, छाण के कीड़े वगैरह तेइन्द्रिय जीव हैं।

नियम :-

अ) कोई भी धान्य, छानकर वापरना और सड़े हुए धान्य में होने वाले जीवों की सावधानी पूर्वक जयणा करना (ठंडे स्थान पर रख देना)।

ब) धान्य में कीड़े पड़ने के बाद धान्य को धूप में न रखकर, कीड़े होने की संभावना होने के पहले ही धूप में रख देने चाहिए। इसी प्रकार खटिया, बिस्तर, गादी वगैरह में भी खटमल अथवा दूसरे जीव जंतु के पैदा होने के पहले ही धूप में रखने का खास उपयोग रखना। घर में सफाई रखना जिससे चींटी वगैरह न हो।

H. चउरिन्द्रिय

बिच्छू, भौरे, मच्छर, डाँस, मक्खी, कोकरोच वगैरह।

नियम : –

अ) घर में सफाई रखनी जिससे ये जीव उत्पन्न ही नहीं होंगे।

ब) वे मर जायें ऐसी दवा वगैरह घर में नहीं छांटनी।

स) किसी भी स्थान पर बैठते या कोई वस्तु रखते या लेते समय विकलेन्द्रिय जीवों की रक्षा के लिए नजर डालकर दृष्टि पडिलेहणा अवश्य करनी चाहिये एवं कोई जीव हो तो उसे बचाना चाहिए।

उपरोक्त बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय को विकलेन्द्रिय भी कहा जाता है। इन तीनों के पर्याप्त एवं अपर्याप्त ये दो भेद होने से 3ह्र2=6 भेद।

ध्यान रखे : एकेन्द्रिय से चउरिन्द्रिय तक के सभी जीव संमुच्छिर्म और तिर्यंच है।

I. संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच

ये जीव गर्भज तिर्यंच के समान ही दिखते हैं। भैंस, सिंह वगैरह संमूर्च्छिम भी होते हैं और गर्भज भी होते हैं।

J. संमूर्च्छिम मनुष्य

संमूर्च्छिम मनुष्य, गर्भज मनुष्य जैसे नहीं दिखते हैं। इन्हें पाँच इन्द्रियाँ होती है। परंतु इनका शरीर अत्यन्त छोटा (अंगुल का असंख्यातवां भाग जितना) होने से, एक साथ असंख्य उत्पन्न होने पर भी नहीं दिखते। इनका आयुष्य भी अंतर्मुहूर्त का ही होता है। वे गर्भज मनुष्य के 14 अशुचि स्थानों में उत्पन्न होते हैं। ये अपर्याप्त ही होते हैं।

K. मनुष्य के 14 अशुचि स्थान

1. विष्टा 2. मूत्र 3. कफ-थूक 4. नाक का मैल 5. उल्टी 6. झूठा पानी अथवा भोजन 7. पित्त 8. रक्त (खून) 9. वीर्य 10. वीर्य के सूखे पुद्गलों के भीगने से एवं शरीर से अलग रखे हुए भीगे पसीनेवाले कपड़ों में 11. रस्सी (मवाद) 12. स्त्री-पुरुष के संयोग में 13. नगर की खालों में (गटरों में) 14. मनुष्य के गुर्दे में।

मनुष्य के शरीर से अलग हुए इन 14 स्थानों में 48 मिनिट के बाद सतत असंख्य संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य उत्पन्न होते हैं, मरते हैं, उत्पन्न होते हैं, मरते हैं। इस तरह निरंतर उत्पत्ति एवं मरण चालू ही रहता है। इन जीवों की रक्षा के लिए इन अशुचि पदार्थों की बराबर जयणा करनी चाहिए।

L. जयणा के नियम

1. झूठे बर्तन 48 मिनिट होने से पहले धो लेना।
2. उबाला हुआ पानी ठण्डा हुआ है या नहीं यह देखने के लिए उसके अंदर हाथ नहीं डालना। लेकिन बाहर से थाली स्पर्श करके जान लेना।
3. थाली धोकर पीना और कपड़े से पोंछना।
4. पसीने वाले कपड़े उतारकर डूचा (गोलमटोल) करके बाथरूम में नहीं रखना, पसीने वाले होने से सूखा देना।

5. कपड़ों को 48 मिनिट से ज्यादा भिगोकर नहीं रखना।
6. रसोईघर में डिब्बे वगैरह को भीगे अथवा जैसे-तैसे हाथ लगाए हो तो बराबर पोंछ कर रखना।
7. पेशाब-शौच शक्य हो तो बाहर खुले में जाना।
8. कफ अथवा थूक वगैरह को राख अथवा धूल में मिला देना अथवा कपड़े में लेकर मसल देना।

गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय की जयणा (रक्षा) के लिए नियम

1. कुत्ते, बिल्ली, चूहे, सांप, भुंड, चिड़िया, मुर्गा, गाय, भैंस, छिपकली वगैरह की हिंसा न हो उसकी सावधानी रखना।
2. उनके मांस और हड्डी से मिश्रित टूथ-पेस्ट वगैरह वस्तु नहीं वापरनी।
3. फैशन की भी बहुत सारी वस्तुएँ लिप्स्टिक वगैरह इन निर्दोष प्राणियों की हिंसा से बनते हैं। इसलिए उपयोग में नहीं लेना।

M. गर्भज मनुष्य

स्त्री के गर्भ से जन्म पाने वाले जीव गर्भज कहलाते है। एक बार पुरुष के साथ संयोग होने के बाद स्त्री की योनि में **9 लाख गर्भज पंचेन्द्रिय मनुष्य,** 2 से 9 लाख विकलेन्द्रिय तथा असंख्य संमूर्च्छिम मनुष्य जीवों की उत्पत्ति होती है इसलिए ज्यादा से ज्यादा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए।

नियम :

1. तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं मनुष्यों को बाँधना नहीं, वध नहीं करना, गाली नही देना।
2. नौकरों के पास ज्यादा काम नहीं कराना, हो सके उतना दूसरों को सहाय करना, धर्म की प्राप्ति कराना।
3. बालकों को बचपन में ही संस्कार देना।
4. घर में सासु-बहू, देरानी-जेठानी, ननंद, पिता-पुत्र, भाई-भाई वगैरह एक दूसरों को सुनाना नहीं, झगड़ा नहीं करना, मानसिक पीड़ा हो ऐसा नहीं बोलना, और ना ही करना।
5. बालकों को ज्यादा नहीं मारना, और ज्यादा लाड़ भी नहीं करना।

नोट : 1. जीव के 563 भेद चार्ट में से याद करें।

मनुष्य के तीन भेद : (1) कर्मभूमि (2) अकर्मभूमि (3) अंतरद्वीप

इसमें भी कर्मभूमि के 15, अकर्मभूमि के 30 और अंतरद्वीप के 56, कुल मिलाकर 101 उपभेद होते हैं।

15+30+56=101 भेद मनुष्य गति के, जो गर्भज एवं संमूर्च्छिम दो भेद रा होते हैं। साथ ही गर्भज में पर्याप्त एवं अपर्याप्त दोनों भेद होते हैं। संमूर्च्छिम के मात्र अपर्याप्त 101 भेद हैं। कुल 303 भेद होते हैं।

12. विनय - विवेक

A. सावधान ! आप देवद्रव्य के कर्जदार तो नहीं है, ना... ?

दुर्गति की हारमालाओं से बचने के लिए इतना अवश्य पढकर समझ लिजीए

साकेतपुर नाम के एक नगर में एक श्रेष्ठिने एक हजार कांकणी (रुपये) देवद्रव्य का बकाया कर्जा (राशी) नहीं भरकर घोर दुष्कर्म बांधा और बिना आलोचना किए मृत्यु के शरण में जाकर जल मनुष्य-महामत्स्य के भवों मे 6-6 महिना घंटी में पिसाते हुए महावेदना भोगकर अनुक्रम से सातवी नरक में 2-2 बार उत्पन्न हुआ...

उसके बाद समय के अंतर से या निरंतर

हजार भव - कुत्ते के	हजार भव - सर्प के	हजार भव - कृमि के
हजार भव - सुअर के	हजार भव - बिच्छु के	हजार भव - पतंगिये के
हजार भव - बकरी के	हजार भव - पृथ्वीकाय के	हजार भव - मक्खी के
हजार भव - मृग के	हजार भव - अपकाय के	हजार भव - भँवरे के
हजार भव - उंबर के	हजार भव - तेउकाय के	हजार भव - कछुए के
हजार भव - शियाल के	हजार भव - वायुकाय के	हजार भव - मगर के
हजार भव - बिल्ली के	हजार भव - वनस्पतिकाय के	हजार भव - पाडे के
हजार भव - चूहे के	हजार भव - शंख के	हजार भव - गधे के
हजार भव - नेउर के	हजार भव - छीप के	हजार भव - खच्चर के
हजार भव - छिपकली के	हजार भव - मच्छी के	हजार भव - घोडे के
हजार भव - गधे के	हजार भव - कीडे के	हजार भव - हाथी के कीए

यह सभी भवो में शस्त्रघात से महाव्यथा भोगकर मृत्यु पाता है।

ऐसे हजारो भवों के पश्चात वह जीव वसंतपुर नगर में कोट्याधिपति वसुदत्त के घर उत्पन्न हुआ और गर्भ में आते ही सर्व द्रव्यों का नाश हुआ। जन्म होते ही पिता की मृत्यु हुई। पांच साल के पश्चात माता की भी मृत्यु हुई, जिससे गाँव के लोगों ने उसका नाम निष्पुण्यक रखा। सभी जगहों से तिरस्कृत होता हुआ वह युवान हुआ और भाग्य को आजमाने के लिए परदेशगमन किया। बीच समंदर जहाज डुबने के पश्चात निष्पुण्यक लकडे के सहारे किनारे पर आया और जहां भी गया वह कुत्ते की तरह हकलाया गया।

एक बार जंगल में भटकते-भटकते महाज्ञानी गुरुमहाराज का योग हुआ। जिन्हे अपना दुःखित जीवन वृतांत कहा। ज्ञानी गुरुमहात्मा ने ज्ञानसे उसके पूर्वभवों को देखा और सारी बातें बताई। देवद्रव्य की बकाई राशी नहीं अदा करने का यह फल है यह समझने के पश्चात निष्पुण्यक ने गुरु महाराज से देवद्रव्य के भक्षण का प्रायश्चित मांगा। गुरुभगवंत ने अधिक देवद्रव्य भरपाई-रक्षण और वृद्धि इत्यादी के द्वारा दुष्कर्म नाश होने का समझाया।

तभी निष्पुण्यक नियम करता है कि....

एक हजार गुनी देवद्रव्य की बकाया राशी जब तक जमा न करवाउं तब तक एक जोड वस्त्र और रोजके आहार से ज्यादा कुछ भी द्रव्य अपने पास नहीं रखुंगा। धीरे-धीरे बकाया देवद्रव्यकी राशी भरपाई करके अऋणी हुआ और अपने स्वद्रव्य से भव्य जिनालय बनवाकर अखंड जिनभक्ति करते-करते तीर्थंकर नाम कर्म की उपार्जना करके दीक्षा लेकर संयम की अपूर्व आराधना करते हुए देवलोक में उत्पन्न हुआ और उसके पश्चात महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बनकर सिद्ध गति प्राप्त की।

देवद्रव्य क्या है ? उसमें कौनसे द्रव्यों का समावेश होता है ?

* परमात्मा को समर्पण किया हुआ द्रव्य : **देवद्रव्य**
* भंडार में रखा हुआ द्रव्य : **देवद्रव्य**
* अष्टप्रकारी जिनपूजा के चढावें/बोली का द्रव्य : **देवद्रव्य**
* अंजनशलाका, प्रतिष्ठा के चढावे का द्रव्य : **देवद्रव्य**
* परमात्मा की रथयात्रा के सभी चढावें/बोली का द्रव्य : **देवद्रव्य**
* संघमाला, उपधान की माला का द्रव्य : **देवद्रव्य**
* महापूजा-महाआंगी इत्यादी सभी के निर्माल्यका द्रव्य: **देवद्रव्य**
* पर्युषण महापर्व के स्वप्नाजी के चढावे का द्रव्य : **देवद्रव्य**
* आरती में रखा हुआ और आरती के चढावें/बोली का द्रव्य : **देवद्रव्य**
* परमात्मा की भक्ति से दिया हुआ द्रव्य : **देवद्रव्य**

देवद्रव्य का उपयोग पुराने जिनमंदिरों का जिर्णोद्धार और नये जिनमंदिर / जिन बिंबके निर्माण के अलावा करने से देवद्रव्य भक्षण का भयंकर दोष लगता है।

देवद्रव्य के सुयोग्य आज्ञा अनुसार वहीवट के लाभ	देवद्रव्य की अपनी मर्जी अनुसार वहीवट के नुकसान
* धंधे में बांधे हुए पापों को धोने का अवसर	* परमात्मा की आज्ञा का भंग * संघ का और दाता का विश्वासघात
* बुद्धि–प्रज्ञा और जानकारी का सदुपयोग	* विराधना–मिथ्यात्व आदि के महादोष * झुठी परंपरा चालु होती है
* अनेक गुरुभगवंतों का परिचय	* लोक में निंदा, प्रतिष्ठा खंडित होना
* अनेक संघो–तीर्थों की मुलाकात–दर्शन का लाभ	* राजकीय कार्यवाही में नुकसान होना
* तीर्थंकर नामकर्म बंध द्वारा आत्मशुद्धि	* पुण्य की समाप्ति * आत्मविकास अटकजाना
* प्रभावना–रक्षा–आराधना के प्रसंग में जवाबदारी पूर्वक का योगदान	* सीदाते हुए क्षेत्र ज्यादा सीदाए
* द्रव्यों के सुयोग्य दान की भावना उत्पन्न करने का लाभ	* भवांतर में जैन धर्म की प्राप्ति दुर्लभ होना
* सद्गति और मुक्ति सुनिश्चित	* दुर्गति एवं संसार परिभ्रमण सुनिश्चित

जैन शासन की स्थावरमुडी जैसे देवद्रव्य का भक्षण या उपेक्षा जानबुझकर या अनजान से भी हो तो भयंकर परिणाम इसी भव में या परभव में अवश्य भुगतने पडते है।

<u>संघ के आराधक–दाताओं को नम्र अपील</u>

जिनभक्ति संबंधी, स्वप्न की उछामणी या रथयात्रा इत्यादी चढावे की बकाया राशी बाकी तो नहीं है ना... ?? अगर बाकी है तो जल्द से जल्द भर दिजिए!

<u>श्री संघ के द्रव्य के वहीवटकर्ताओं को नम्र अपील</u>

अपने धंधे की बकाया राशी की वसुलात में विलंब ज्यादा नुकसान नहीं करेगा... जबकी धर्मद्रव्यकी बकाया राशी की वसुलात में विलंब आपत्तिकी परंपरा सर्जती है..

शास्त्र कहते है की कर्मसत्ता को आपका एड्रेस ढुंढने में जरा भी देर नहीं लगेगी

13. सम्यग् ज्ञान

A. आठ कर्म

जीव का शुद्ध-अशुद्ध स्वरूप: मौलिक अनंत गुण, 8 कर्म बादल और प्रकटीत दोष विकार

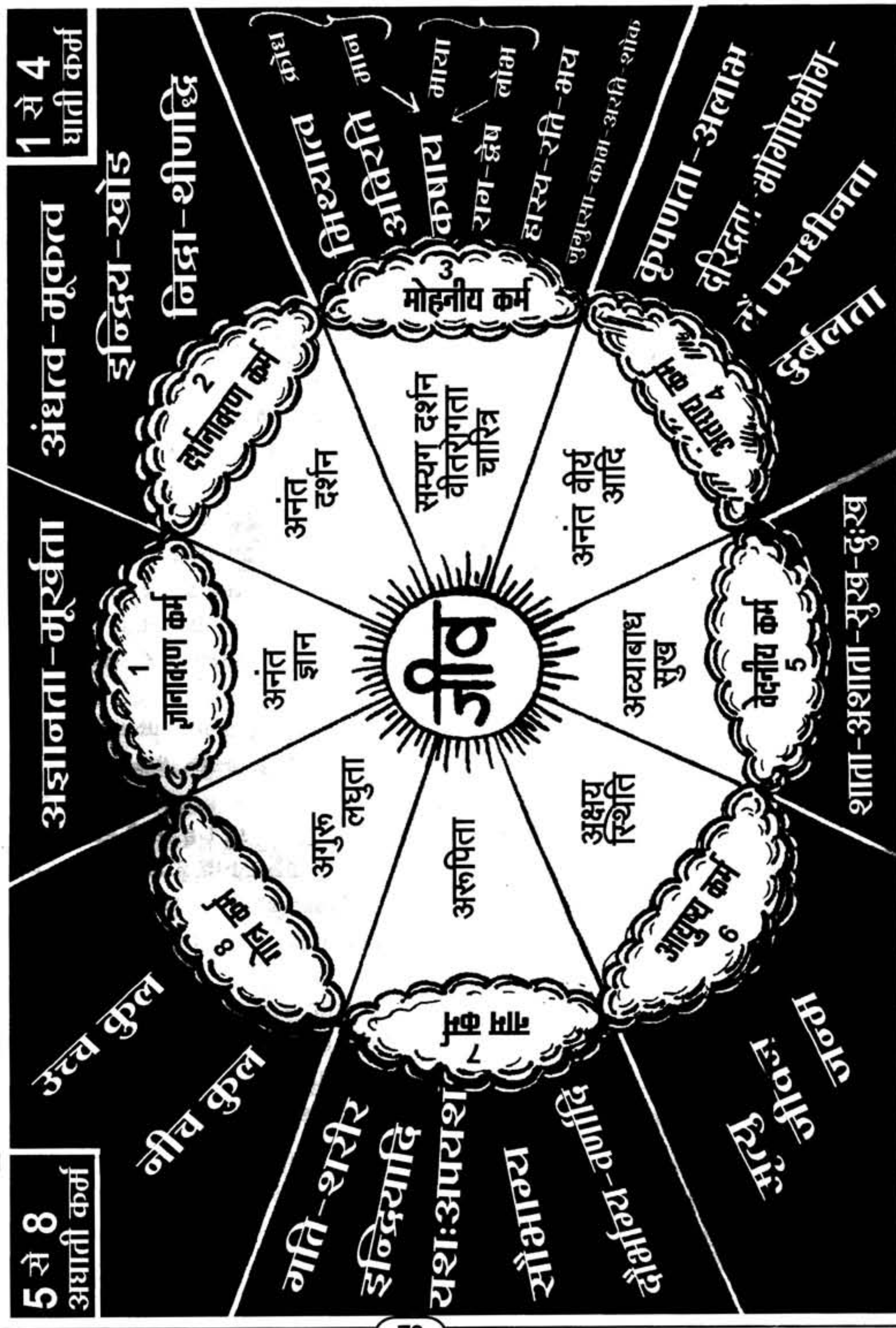

अ.) कर्म के भेद-प्रभेद की पहचान

(1) ज्ञानावरणीय कर्म

यह आँख पर बंधी हुई पट्टी के समान है। जैसे आँख पर बंधी पट्टी के कारण हम कोई भी पदार्थ देख नहीं सकते, वैसा ही ज्ञानावरणीय कर्म के कारण आत्मा ज्ञेय पदार्थों को जान नहीं सकता। इसके पाँच भेद है:

(1) मतिज्ञानावरण (2) श्रुतज्ञानावरण (3) अवधिज्ञानावरण (4) मन:पर्यव ज्ञानावरण और (5) केवल ज्ञानावरण। उपरोक्त पाँच आवरण आत्मा के मति आदि पाँचों ज्ञानों को आच्छादित कर देते हैं।

मतिज्ञान : पाँच इन्द्रिय और मन से होने वाला ज्ञान

श्रुतज्ञान शास्त्र उपदेश आदि से होने वाला शब्दानुसारी ज्ञान

अवधिज्ञान : इन्द्रिय, मन और शास्त्राभ्यास के बिना ही होनेवाला रूपी द्रव्यों का प्रत्यक्ष ज्ञान

मन:पर्यवज्ञान : अढाई द्वीप समुद्र में रहे संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मन का प्रत्यक्ष ज्ञान। प्रस्तुत ज्ञान अप्रमत्त मुनि को ही प्राप्त होता है।

केवल ज्ञान : सर्वकालिक समस्त द्रव्य एवं उसके सर्व पर्यायों का आत्मा को होने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान।

मतिज्ञान में चार क्रमिक अवस्थाएँ हैं : अवग्रह, इहा, अपाय एवं धारणा।

अवग्रह : प्राथमिक सामान्य ज्ञान, **ईहा** : उहापोह, **अपाय** : निर्णय, **धारणा** : धाराप्रवाह, संस्कार एवं स्मृति

(2) दर्शनावरणीय कर्म

यह द्वारपाल के समान है। जिस तरह पहरेदार, इजाजत के बिना राजसभा में आनेवाले व्यक्ति को रोक देता है, ठीक वैसे ही दर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव सामान्य बोध भी प्राप्त नहीं कर सकता। दर्शनावरणीय कर्म के 9 प्रकार है। 4 दर्शनावरण + 5 निद्रा। दर्शनावरण के 4 भेद हैं।

1) **चक्षुदर्शनावरण** : वस्तु चक्षु से दृष्टि गोचर न हो।

2) **अचक्षुदर्शनावरण** : अन्य इन्द्रिय अथवा मन से वस्तु दृष्टिगोचर न हो

3) **अवधि दर्शनावरण** : अवधिदर्शन से होते रूपी द्रव्यों के सामान्य बोध का अवरोधक

4) **केवल दर्शनावरण** : केवलदर्शन से होते सर्व द्रव्यों के सामान्य बोध का अवरोधक

निद्रा के भेद 5 हैं...

(1) **निद्रा :** अल्पनिद्रा, जिसमें बिना कष्ट से जाग सके ।

(2) **निद्रा-निद्रा** गाढ निद्रा, जिसमें से जागने में कष्ट होता है ।

(3) **प्रचला** बैठे अथवा खड़े-खड़े नींद लगने की अवस्था ।

(4) **प्रचला-प्रचला** चलते समय नींद आना ।

(5) **स्त्यानर्द्धि** जिसमें जागृत अवस्था में संकल्पित कार्य निद्रित अवस्था में पूरा करें।

इनमें से पहले 4 दर्शनावरण दर्शनशक्ति : सामान्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं होने देते। जबकि 5 निद्रा जो प्राप्त दर्शन को पूर्ण रूप से ढक देती हैं। अत: इनका भी समावेश दर्शनावरण में होता है।

(3) मोहनीय कर्म

इसके कुल 28 भेद हैं। यह सभी दो विभागों में विभाजित हैं : 1) दर्शन मोहनीय 2) चारित्र मोहनीय

दर्शन मोहनीय

दर्शन मोहनीय के भी तीन भेद माने गये हैं

(1) **मिथ्यात्व मोहनीय** जिसके उदय होने पर जीव को अतत्त्व के प्रति रुचि प्रकट होती है और सर्वज्ञ भगवंत द्वारा निरूपित तत्त्वज्ञान के प्रति अरुचि पैदा होती....श्रद्धा नहीं बनती

(2) **मिश्र मोहनीय :** किसी तत्त्व के प्रति रुचि नहीं, तथा अतत्त्व के प्रति भी रुचि नहीं। साथ तत्त्वातत्त्व के प्रति अरुचि भी नहीं। इसे मध्यस्थ (तटस्थ) भाव भी कहते हैं।

(3) **समकित मोहनीय :** मिथ्यात्व के शुद्ध किये गये दलित, जिसके उदित होने पर तत्त्व के प्रति रुचि उत्पन्न होती है, फिर भी शंका कुशंकादि दोष होने की संभावना होती है।

चारित्र मोहनीय

चारित्र मोहनीय के 2 भेद और 25 प्रभेद हैं :

(1) कषाय मोहनीय के 16 भेद है (2) नोकषाय मोहनीय के 9 भेद है.

कषाय के 16 भेद– कष् = संसार, आय = लाभ। क्रोधादि भावना में से जिसकी उत्पत्ति होती है, उसे कषाय कहा जाता है अर्थात् जो संसार के प्रति जीवन में आसक्ति , अनुराग भाव पैदा करता है, वह कषाय है। ये है – क्रोध, मान, माया और लोभ। इसमें से प्रत्येक के अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय एवम् संज्वलनादि 4–4 प्रभेद है। इस तरह कुल मिलाकर 16 कषाय होते हैं।

नोकषाय के 9 प्रभेद

9 प्रभेद कषाय से प्रेरित अथवा कषाय के प्रेरक माने गये हैं।

(1) हास्य, (2) शोक, (3) रति, (4) अरति, (5) भय, (6) जुगुप्सा।

उपरोक्त छ: की निर्मिति किसी निमित्तवश अथवा कदाचित् बिना किसी निमित्त के स्व–संकल्प वश होती है।

नोकषाय के 9 प्रभेद में 3 वेद का भी समावेश होता है।

(1) **पुरुषवेद** : जिस प्रकार जुकाम होने से नमकीन खाने की इच्छा होती है, ठीक उसी प्रकार जिसका उदय होने से स्त्री संसर्ग करने की अभिलाषा हो

(2) **स्त्री वेद** : जिसके उदय से पुरुष संसर्ग की तीव्रेच्छा हो।

(3) **नपुंसक वेद** : स्त्री–पुरुष उभय के साथ संसर्ग करने की तीव्र लालसा पैदा होना।

(4) अंतराय कर्म

इसके कुल 5 भेद हैं : **(1)दानांतराय, (2) लाभांतराय, (3) भोगांतराय, (4)उपभोगांतराय, (5) वीर्यांतराय**

उपरोक्त कर्म प्राय: क्रमश: दान प्रदान करने में, लाभ प्राप्ति में, एक ही बार भोग्य ऐसे अन्नादि के भोग में एवं बारंबार भोग्य वस्त्रालंकारादि के उपभोग में, आत्म वीर्य प्रकट करने में बाधा रूप बनता है। ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों में से उक्त चार घाति कर्म है और चार अघाति कर्म निम्न प्रकार से है।

(5) वेदनीय कर्म

इसके दो भेद है

शाता वेदनीय : जिसका उदय होने से आरोग्य, सुख–संपदा, विषय भोगादि के चरम सुख का अनुभव होता है।

अशातावेदनीय : जिसका उदय होने से नानाविध कष्ट, दु:ख, पीड़ा और वेदना का अनुभव होता है।

(6) आयुष्य कर्म

इसके कुल चार भेद है :– **(1) नरकायु (2) तिर्यंचायु (3) मनुष्यायु (4) देवायु**। नरकादि भव में जीव को उतने काल तक बांधकर रखनेवाला, उस भव संबंधित शरीर में जीव को गोंद के समान चिपकाकर रखने वाला कर्म ही आयुष्य कर्म है।

(7) गोत्र कर्म

इसके दो भेद है : (1) **उच्च गोत्र:** जिसका उदय होने से ऐश्वर्य, सत्कार, मान–सन्मानादि के आधार स्वरूप उत्तम कुल, जाति अथवा गोत्र की प्राप्ति होती है।
(2) **नीच गोत्र:** अधम, निम्न, हीन–दीन और दलित जाति अथवा कुल की प्राप्ति होना।

(8) नाम कर्म

इसके कुल 103 भेद – प्रभेद है : **(A) 75 पिंड प्रकृति, (B) 8 प्रत्येक प्रकृति, (C)10 त्रसदशक, (D) 10 स्थावर दशक**

(A) पिंड प्रकृति :

भेद – प्रभेद समूहवाली 75 प्रकृतिया, जो निम्नांकित प्रकार में विभाजित है :

I. गति – 4, II. जाति – 5, III. शरीर – 5, IV. अंगोपांग – 3, V. बंधन – 15,

VI. संघातन – 5, VII. संघयण – 6, VIII. संस्थान – 6, IX. वर्णादि – 20, X. आनुपूर्वी – 4, XI. विहायोगति – 2.

पिंडप्रकृति की उपप्रकृतियाँ निम्नानुसार है :

I. गतिनाम कर्म : जिस कर्म के कारण (उदय से) नरकादि पर्याय की प्राप्ति होती है, उसे गति नाम कर्म कहा जाता है। इसके कुल 4 भेद है **(1) नरकगति नामकर्म (2) तिर्यंचगति नामकर्म (3) मनुष्यगति नामकर्म (4) देवगति नामकर्म** ।

II. जाति नामकर्म : जो कर्म एकेन्द्रिय से लगाकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों को जाति प्रदान करता है, उसे जातिनामकर्म कहा जाता है। इसके कुल 5 भेद है। यह हीनाधिक इन्द्रिय – चैतन्य का व्यवस्थापक है।

III. शरीर नाम कर्म : ''शीर्यते इति शरीरम्'' जो शीर्ण– विशीर्ण = नष्ट होता है, उसे शरीर कहा जाता है। इसके कुल 5 भेद है :

(1) औदारिक शरीर नामकर्म : जिस कर्म के कारण उदार, स्थूल पुद्‌गलो से बना हुआ शरीर मनुष्य गति और तिर्यंचगतिवाले जीव को प्राप्त होता है।

(2) वैक्रिय शरीर नामकर्म : जिससे विविध क्रिया (अणु–महान, एक – अनेक) संपन्न करने में सक्षम शरीर। यह देव–नारक को प्राप्त होता है।

(3) आहारक शरीर नामकर्म : जिस कर्म के बल पर आहारक लब्धियुक्त चौदह-पूर्व के धनी साधु/महाराज देवाधिदेव भगवंत की ऋद्धि – सिद्धि के दर्शन और स्वयं की शंका–संशय निवारणार्थ एक हाथ का शरीर धारण करते हैं– बनाते हैं।

(4) तैजस शरीर नामकर्म :जिस कर्म के कारण शरीर में आहार को पचाने वाले तेजस पुद्‌गलों के समूह की प्राप्ति होती है

(5) कार्मर्ण शरीर नामकर्म : जिसके कारण जीव के साथ संलग्न कर्म–समूह सूक्ष्म शरीर रूप धारण करता है।

IV. अंगोपांग नामकर्म : जिसके उदय से (1) औदारिक ,(2) वैक्रिय,और (3) आहारक शरीर को मस्तक, उदर, वक्ष, पीठ, दो हाथ, दो पांव आदि आठ अंग, अंगुलिआदि उपांग और पर्व,रेखादि अंगोपांग प्राप्त होते है जबकी एकेन्द्रिय जीव प्रस्तुत कर्म विरहीत होने से उसका शरीर अगोपांग विहीन होता है ओर शाखा पत्रादि विभिन्न जीव के शरीर है।

V. बंधन नामकर्म : जिसके उदित होने पर नये औदारिकादि पुद्‌गल शरीर के विभिन्न पुद्गलों के साथ लाख की भाँति परस्पर एक–दूसरे से चिपक जाते है। इसके कुल 15 भेद हैं।

(1) औदारिक औदारिक, (2) औदारिक तैजस, (3) औदारिक कामर्ण, (4) औदारिक तैजस कार्मण, (5) वैक्रिय–वैक्रिय, (6) वैक्रिय – तैजस, (7) वैक्रिय–कार्मण, (8) वैक्रिय–तैजस–

समचतुरस्र संस्थान

छ: प्रकार के संघयण

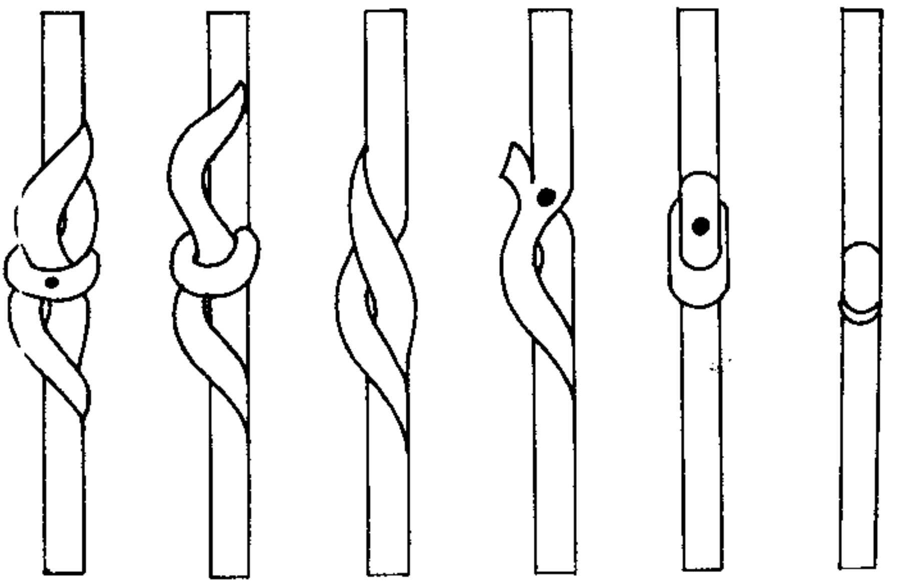

1	2	3	4	5	6
वज्र ऋषभ नाराच संघयण	ऋषभ नाराच संघयण	नाराच संघयण	अर्धनाराच संघयण	कीलिका संघयण	छेवट्टुं संघयण

कार्मण, (9) आहारक – आहारक, (10) आहारक – तैजस, (11) आहारक–कार्मण, (12) आहारक – तैजस कार्मण, (13) तैजस–तैजस, (14) तैजस–कार्मण, (15) कार्मण – कार्मण बंधन।

VI. संघातन नामकर्म : शरीर को नियत प्रमाण में निर्मित/रचित करते समय पुद्गलों के भागों को उस उस स्थान पर दंताली की तरह संचित करने को संघातन नामकर्म कहा जाता है।

इसके कुल 5 भेद हैं। **(1) औदारिक शरीर संघातन (2) वैक्रिय शरीर संघातन (1) आहारक शरीर संघातन (4) तैजस शरीर संघातन (5) कार्मण शरीर संघातन**

VII. संघयण नामकर्म : हड्डियों के दृढ/दुर्बल जोड प्रदान करनेवाले कर्म को संघयण नामकर्म कहा गया है। इसके कुल 6 भेद हैं।

(1) वज्र ऋषभ नाराच = एक दूसरे में आँटी (गाँठ) लगा कर हड्डियों का परस्पर संबंध, जिसके बीच में हड्डी का ही पट और उस पर मेख (कील) होती है। (नाराच=मर्कट बन्ध, इस पर ऋषभ = हड्डी का लपेटा हुआ पट्टा और बीच में ठीक ऊपर से नीचे तक आरपार की गयी वज्र जैसी हड्डी की मेख।)

(2) ऋषभ नाराच = केवल वज्र कील को छोडकर ऊपर जैसा ही।

(3) नाराच = केवल मर्कट बन्ध

(4) अर्धनाराच = सांधे के एक ओर हड्डी की रचना में मर्कट बन्ध हो और दूसरी ओर कील हो।

(5) कीलिका = केवल कील से ही हड्डी टाँकी गयी हो।

(6) छेवट्ठुं = छेद स्पृष्ठ अथवा सेवार्त। सिर्फ अंत में परस्पर सट कर रही दो हड्डियाँ, जो तेल–मालिशादि सेवा की अपेक्षा रखती हो।

VIII. संस्थान नामकर्म : (1) सम चतुरस्र:(अस्र= कोण, कोना) पर्यंकासन में स्थित व्यक्ति के दाँये घुटने से बाँये कंधे (स्कंध) पर्यंत का अंतर और दाँये स्कंध से बाँये घुटने के बीच रहा अंतर। ठीक वैसे ही दो घुटनों का अंतर और दो घुटनों के मध्य भाग से ललाटप्रदेश तक का अंतर। उपरोक्त चारों के बीच रहा अंतर (दूरी) एक–सा होता है, अतः उसे समचतुरस्र संस्थान कहा गया है।

(2) न्यग्रोध : परिमंडल वटवृक्ष की भाँति चारो ओर से समान रूप में पुष्ट... भरा–भरा, नाभि से ऊपर लक्षण वाला एवं नीचे लक्षण हीन।

(3) सादि= नाभि के नीचे लक्षण युक्त हो, ऊपर नहीं

(4) वामन = मस्तक, गला, हाथ–पाँव आदि सप्रमाण हों।

(5) कुब्ज = उपरोक्त अवयवों के अतिरिक्त वक्ष, सीना... उदरादि अच्छे हों

(6) हुंडक = सभी अवयव लक्षण प्रमाण विहीन हों। इस तरह संस्थान के कुल 6 भेद है।

IX. वर्ण नामकर्म : जिसके उदय से वर्ण, गंध, रस एवम् स्पर्श अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ अथवा सुन्दर-कुरूप होते हैं। वर्ण के कुल 20 भेद हैं, जिसमें से वर्ण नामकर्म के पाँच प्रकार - (1) कृष्ण (2) नील (3) रक्त (4) पीत (5) श्वेत।

गंध नामकर्म : इसके दो प्रकार है - (1) सुरभि (2) दुरभि।

रस नामकर्म : इसके पाँच प्रकार : (1) तिक्त (कडवा) (2) कटु (चटपटा, तीखा,उग्र) (3) कषाय (तुवर-बहेडा कसैलापन) (4) आम्ल = खट्टा (5) मधुर (नमक का इसमे समावेश)।

स्पर्श नामकर्म इसके आठ प्रकार है: (1) कर्कश (2) मृदु (3) गुरू (4) लघु (5) शीत (6) उष्ण (7) स्निग्ध (8) रूक्ष।

X. आनुपूर्वी : भवांतर में विग्रहगति से भ्रमण करनेवाले जीव को बैल के नाथ की तरह नथना। इसके कुल चार भेद है : **(1) नरकानुपूर्वी (2) तिर्यंचानुपूर्वी (3) मनुष्यानुपूर्वी (4) देवानुपूर्वी।**

XI. विहायोगति नामकर्म : विहायोगति अर्थात् खगति = चाल। इसके दो भेद है :

(1) **शुभ खगति** : गज, वृषभ, हंसादि की चाल

(2) **अशुभ खगति** : ऊँट, गद्धे की तरह चाल।

प्रत्येक प्रकृति : इसके कुल आठ भेद है:

(1) अगुरू लघु नामकर्म : इसके उदय से शरीर, ना इतना गुरू (भारी) अथवा ना लघु (हलका), बल्कि अगुरूलघु प्राप्त होता है।

(2) उपघात नामकर्म : इसके उदय से स्वयं के अवयव से ही हनन होता हैं। ये अवयव: छोटी जीभ, छट्ठी अंगुली आदि।

(3) पराघात नामकर्म : इसके उदय से जीव को ऐसी मुखमुद्रा प्राप्त होती है कि वह अपनी ओजस्विता से अन्य जीव को आच्छादित कर देता है।

(4) श्वासोश्वास नामकर्म : इससे श्वासोच्छ्वास की लब्धि प्राप्त होती है।

(5) आतप नामकर्म : ऐसे शरीर की प्राप्ति होती है कि जो स्वयं शीत होते हुए भी अन्य जीव को उष्णता प्रदान करता है, जैसे सूर्य विमान के रत्नों से युक्त शरीर ।

(6) उद्योत नामकर्म: जिसके उदय से शरीर शीतलता प्रदान करता है, जैसे उत्तरवैक्रिय शरीर, चंद्रादि रत्न, औषधि आदि का शरीर।

(7) निर्माण नामकर्म : विश्वकर्मा की भांति शरीर के निश्चित स्थान पर अंगोपांग को बिठानेवाला

(8) जिन नामकर्म : जिसके उदय से केवलज्ञान की अवस्था में अष्ट महाप्रातिहार्यादि अतिशयों से युक्त और सुरासुर मानव आदि से पूज्य बन कर धर्मशासन प्रवर्तित करने की शक्ति की प्राप्ति हो।

त्रस-स्थावर दशक

(1) **त्रस नामकर्म** : जिससे धूप से छाँह (छाया) में स्वेच्छया हिलने ...चलने की गति, गमनागमन करने की शक्ति आदि प्राप्त हो। **(1) स्थावर नामकर्म**: जो जीव कही हिलने चलने की गति स्वेच्छया करने में असमर्थ हो उनका स्थावर नामकर्म का उदय होता है, जैसे एकेन्द्रिय जीव-समूहादि।

(2) **बादर नामकर्म**: जिसके उदय से एक, अनेक अथवा असंख्य शरीर परस्पर इन्द्रियग्राह्य बनते हैं । **(2) सूक्ष्म नामकर्म :** जो बादर नहीं अर्थात् बादर से विपरीत हैं वे सूक्ष्म

(3) **पर्याप्त नामकर्म**: जिसके उदय से स्वयोग्य पर्याप्ति परिपूर्ण कर सकें। **(3) अपर्याप्त नामकर्म:** जिसके उदय से स्वयोग्य पर्याप्ति पूर्ण न कर सकें ।

पर्याप्ति के छह भेद हैं : आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोश्वास, भाषा और मन पर्याप्ति

(4) **प्रत्येक नामकर्म**: जिसके उदय से स्वतंत्र शरीर की प्राप्ति हो। **(4) साधारण नामकर्म** : अनंत जीवों को एक ही शरीर की प्राप्ति ।

(5) **स्थिर नामकर्म**: जिसके उदय से शरीर की हड्डियाँ, दाँतादि स्थिर प्राप्त होना **(5) अस्थिर नामकर्म** : जीभ आदि अस्थिर अवयव प्राप्त होना वह अस्थिर नामकर्म कहलाता है,

(6) **शुभनामकर्म :** जिससे नाभि के ऊपर के सभी अवयव शुभ-सुन्दर प्राप्त होते हैं **(6) अशुभ नामकर्म**: जिसके उदय से नाभि के नीचले भाग में अवयव अशुभ प्राप्त होते हैं।

(7) **सौभाग्य नामकर्म** : जिसके उदय से कोई जीव बिना कोई उपकार किये भी सब को प्रिय लगता है। **(7) दुर्भाग्य नामकर्म :** जिससे उपकारी जीव भी लोगों को अप्रिय लगता है।

(8) **सुस्वर नामकर्म** : जिसके उदय से सुरीला कंठ... स्वर प्राप्त करना जैसे कोयल **(8) दुस्वरनामकर्म :** जिसके उदय से विपरीत स्वर प्राप्त होता है, जैसे कौआ।

(9) **आदेय नामकर्म**: जिसके उदय से किसी जीव का वचन युक्ति एवम् आडम्बर विहीन होने के बावजूद भी ग्राह्य माना जाता है। अथवा प्रथम दृष्टि में ही लोग मान-सन्मान प्रदान करते हैं,**(9)अनादेय नामकर्म**: जिसके उदय से वचन अग्राह्य एवम् अनादरणीय होता है।

(10) **यश (कीर्ति) नामकर्म:** जिस कर्म के उदय से लोगों की प्रशंसापात्र बनते हैं, **(10) अपयश (अपकीर्ति) नामकर्म:** यश-कीर्ति से विपरीत अपयश एवम् अपकीर्ति । इस तरह परस्पर विरोधी दस युगलों को त्रस दशक एवम् स्थावर के दशक की संज्ञा दी गयी है।

B. नौ तत्त्व

(1) अजीव तत्त्व

अजीव तत्त्व की कुछ विचारणा

(1) जिसमें चैतन्य शक्ति का अभाव हो, ऐसे पदार्थों को अजीव कहते हैं। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, यह पुद्गल का स्वभाव है। हमें चर्मचक्षु से जो कुछ भी पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे सब पुद्गल स्कंध स्वरूप हैं, नाशवंत हैं। इसी प्रकार जीव का शरीर भी पुद्गल का ही बना हुआ होने से नाशवंत है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल ये भी अरूपी होने से अदृश्य हैं, लेकिन सर्वज्ञ कथित शास्त्रों के वचनों से हमें उन पर श्रद्धा होती है।

(2) प्रदेश और परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ हैं। सर्वज्ञ भगवंतों की दिव्यदृष्टि से भी वह अविभाज्य है। वर्तमान युग के विज्ञान द्वारा खोजा हुआ 'अणु' क्या 'अणु' है ? नहीं, वह तो अनंत-अनंत परमाणुओं का पुंज ही है। (स्कंध है)

(3) समय से लेकर पुद्गलपरावर्तन तक के काल का स्वरूप जानने से हमें प्राप्त दुर्लभ मानव जीवन की महानता का अमूल्य मूल्यांकन होगा और व्यर्थ व्यतीत होते समय की अंतरमन में भारोभार पश्चाताप रूप संवेदना पैदा होगी।

हमारी आत्मा ने अव्यवहार राशि में सूक्ष्म निगोद के भवों में अनन्त पुद्गल परावर्तनकाल तक बार-बार जन्म-मरण आदि की अकथ्य भयप्रद अनेकानेक यातनाएँ सहन की हैं। उनका सत्य वर्णन शास्त्रों द्वारा जानने से हमारी आत्मा काँप उठती है। श्री जिनेश्वर भगवंत द्वारा निर्दिष्ट एवं सर्वोत्कृष्ट धर्म मार्ग हमें मिल गया है। अब एक समय का भी प्रमाद किये बिना अनंतानंत वेदनाएं और दर्दनाक दुःखों की अखंड परंपरा को नष्ट करने में समर्थ ऐसे धर्म मार्ग पर सदा चलते रहें। यही मानव जीवन की सफलता का सच्चा उपाय है।

(4) विश्व में रहे सर्व चराचर पदार्थों का समावेश 'षड्द्रव्य' में अथवा पंचास्तिकाय में हो जाता है। परिणामी आदि 23 द्वारों से षड्द्रव्यों की समानता और असमानता का अवबोध (ज्ञान) होता है। द्रव्यानुयोग का यह सूक्ष्म ज्ञान अध्यात्मचिंतन-मनन के लिए अत्यन्त प्रेरक, उपकारक हैं।

(1) निश्चय से सर्वद्रव्य अपने-अपने स्वभाव को छोड़ कर एक दूसरे में मिश्रण नहीं होते। फिर भी पुद्गल और जीव परिणामी हैं। यानी उनमें परस्पर के संयोग से बड़े-बड़े आश्चर्यजनक परिवर्तन होते हैं।

विश्व की विचित्रता का कारण इन द्रव्यों का परिणमन स्वभाव ही है। शेष धर्मास्तिकायादि चार द्रव्य की तरह जीव और पुद्गल भी यदि अपरिणामी स्वभाव वाले होते तो हमें विश्व की विचित्रता का दर्शन नहीं हो पाता।

(2) अपने परिणामी स्वभाव के कारण ही जीव और पुद्गल अनित्य है। लेकिन स्याद्वाद्, दृष्टिकोण से देखा जाय तो सर्व द्रव्य नित्यानित्य स्वरूप वाले हैं। 'द्रव्य' अविनाशी और ध्रुव है। अतः

द्रव्य की अपेक्षा से सर्व द्रव्य नित्य हैं। 'पर्याय' (अवस्था) विनाशी और अध्रुव है। अतः पर्याय (परिवर्तनशीलता की) दृष्टि से सब द्रव्य अनित्य हैं।

(3) 'स्वतन्त्र कर्ता': षड्द्रव्यों में सिर्फ आत्मा ही कर्ता है। अपना कार्य करने में जो स्वतन्त्र है, वह कर्ता है।

सर्व कर्म रहित पूर्ण शुद्ध स्वरूप वाले मुक्तात्माएँ स्वशुद्ध स्वभाव के ही कर्ता हैं। संसारी जीव का शुद्ध स्वरूप कर्मों से आच्छादित होने से वह राग द्वेषादि विभाव दशा अथवा उसके कारणभूत कर्म का कर्ता बनता है। फिर भी संसारी जीव अरिहंत परमात्मा के पवित्र ध्यान से अंशतः स्वभावदशा का कर्ता-भोक्ता हो सकता है।

अजीव तत्त्व के भेदादि का स्वरूप

अजीव या जीव रहित ऐसे जड़ पदार्थ इस जगत् में 5 प्रकार के हैं।

अजीव के भेद :-

1.	धर्मास्तिकाय	3	स्कंध, देश, प्रदेश
2.	अधर्मास्तिकाय	3	स्कंध, देश, प्रदेश
3.	आकाशास्तिकाय	3	स्कंध, देश, प्रदेश
4.	पुद्गलास्तिकाय	4	स्कंध, देश, प्रदेश, परमाणु
5.	काल	1	
		14	

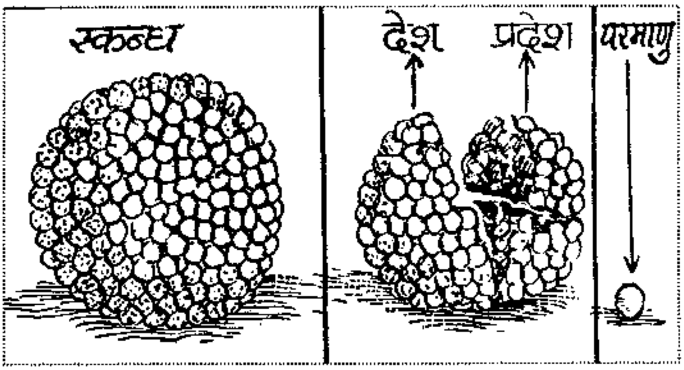

अस्तिकाय : (अस्ति=प्रदेश, काय=समूह) = प्रदेशों का समूह

* **स्कंध** :- पूर्ण वस्तु। जैसे बूँदी का लड्डु।
* **देश** :- वस्तु का अमुक भाग।
* **प्रदेश** :- वस्तु में रहा हुआ अविभाज्य अंश
  (केवली भगवंत की दृष्टि से भी जिनके दो विभाग न हो)
* **परमाणु** :- वस्तु से अलग हुआ अविभाज्य अंश।

धर्मास्तिकायादि का स्वरूप :

(1) धर्मास्तिकाय :

गुण : गति सहायता।

जीव और पुद्‌गल को हलन चलनादि करने में जो सहायता करता है। उदाहरणार्थ : मछली की जल में तैरने की शक्ति है फिर भी तैरने की क्रिया में पानी की आवश्यकता रहती है।

(2) अधर्मास्तिकाय :

गुण : स्थिति सहायता।

जीव और पुद्‌गल को स्थिर रहने में जो सहायक हो। उदाहरणार्थ : धूप से श्रमित हुए पथिक को विश्राम के लिए वृक्ष की छाया।

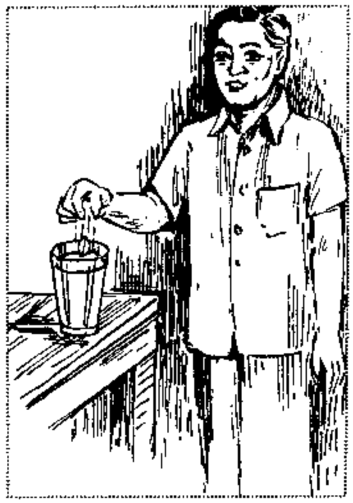

(3) आकाशास्तिकाय :

गुण : अवगाहन।

सभी द्रव्यों को जो अवकाश (जगह) देता है।

उदाहरणार्थ : दूध में शक्कर।

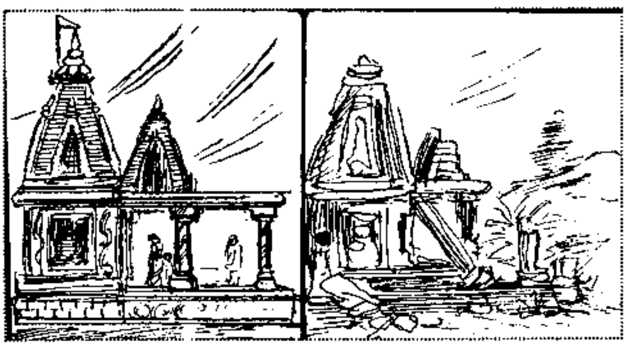

(4) पुद्‌गलास्तिकाय :

गुण: पूरण, गलन स्वभाव।

सड़न (सड़ना), पड़न (पड़ना), विध्वंसन (नाश होना) जिनका स्वभाव है और वर्ण (रूप) गंध, रस और स्पर्श जिसमें हैं।

(5) काल :

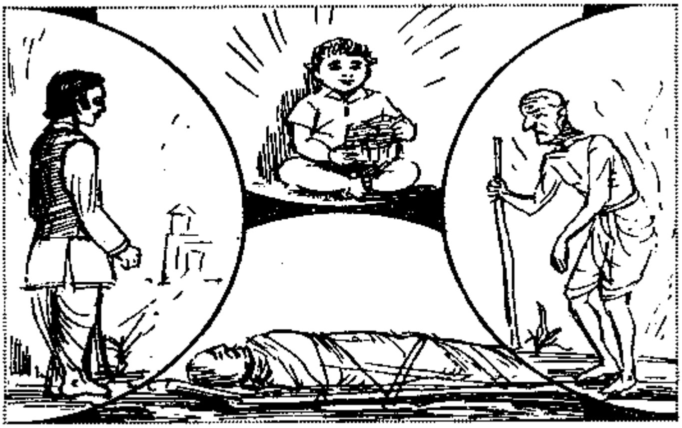

गुण :– वर्तना।

जो परिवर्तन करता है। नये को पुराना बनाता है।

जैसे आयुष्य का मान और छोटे–बड़े का व्यवहार काल से होता है। नया–पुराना, शीघ्र–धीमा आदि भी काल के कारण से ही कहा जाता है। हलन–चलन, खान–पान आदि सभी क्रियाएँ काल की सहायता होने पर ही संभवित हैं बीज में से वृक्षोत्पत्ति, बालक में से युवा अथवा वृद्धा अवस्था भी काल की सहायता से ही होती है।

पुद्‌गल के लक्षण :

10 प्रकार :

1. **शब्द :** आवाज, ध्वनि, नाद यह सब पुद्‌गल के प्रकार हैं।
2. **अंधकार :** यह भी एक पौद्‌गलिक पदार्थ है, जो वस्तु को देखने में बाधक बनता है।
3. **उद्योत :** शीत पदार्थ के शीत प्रकाश को उद्योत कहते हैं।
4. **प्रभा :** सूर्य–चन्द्र के प्रकाश से जो दूसरा किरण रहित उपप्रकाश पड़े। उसे प्रभा कहते हैं।
5. **छाया :** दर्पण और प्रकाश में प्रतिबिम्ब पड़े।
6. **आतप (धूप) :** शीत पदार्थ का उष्ण प्रकाश।
7. **वर्ण :** श्वेत, रक्त, पीला, नीला, काला ये मूल वर्ण हैं।
8. **गंध :** सुरभि (सुगन्ध), दुरभि (दुर्गन्ध) प्रसिद्ध है।
9. **रस :** तीखा, कड़वा, कसैला, खट्टा, मीठा ये मूल रस हैं।
10. **स्पर्श :** शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, गुरु, लघु, मृदु, कर्कश ये आठ स्पर्श हैं।

शब्द के तीन प्रकार :

1. **सचित्त :** जो जीव के मुख से निकले।
2. **अचित्त :** पाषाण आदि पदार्थों के परस्पर टकराने से जो ध्वनि होती है।

3. मिश्र : जीव के प्रयत्न से बजते हुए मृदंग, तबला, शंख आदि की ध्वनि से मिश्रित गीत के जो शब्द।

सूर्य के अतिरिक्त चन्द्रादि ज्योतिषी देवों के विमानों के, जुगनू आदि जीवों के और चन्द्रकान्त रत्नों के शीत प्रकाश को उद्योत कहते हैं।

सूर्य का विमान पृथ्विकाय रूप हैं। उनमें रहे जीवों का शरीर शीतल हैं फिर भी उष्ण प्रकाश देता हैं। वह आतप नाम कर्म के उदय से हैं।

वर्णादि का स्वरूप

	नाम	अर्थ	जैसे
वर्ण – 5	कृष्ण	श्याम	काजल
	नील	बादली	आकाश
	लोहित	लाल	मजीठ, टमाटर
	हरिद्रा	पीला	हल्दी
	श्वेत	सफेद	श्वेत शंख
गंध – 2	सुरभि	सुगंध	कस्तुरी
	दुरभि	दुर्गन्ध	लहसुन
रस–5	तिक्त	तीखा	सूंठ
	कटु	कड़वा	नीम
	कषाय	कसैला (तूरो)	त्रिफला
	अम्ल	खट्टा	इमली
	मधुर	मीठा	शक्कर
स्पर्श–8	शीत	ठंडा	हिम (बर्फ)
	उष्ण	गर्म	अग्नि
	स्निग्ध	चिकना	तेल
	रुक्ष	रुखा	राख
	लघु	हल्का	रुई
	गुरु	भारी	लोहा
	मृदु	कोमल	मक्खन
	कर्कश	कठिन	आरी

काल

काल का स्वरूप

1.	असंख्यात समय	=	1 आवलिका
2.	256 आवलिका	=	1 क्षुल्लक भव (निगोद का जीव इतने समय में एक भव पूरा करता है)
3.	17 1/2 क्षुल्लक भव	=	1 श्वासोच्छ्वास
4.	7 श्वासोच्छ्वास	=	1 स्तोक
5.	7 स्तोक	=	1 लव
6.	77 लव	=	1 मुहूर्त (मुहूर्त=48 मिनट=2 घटिका=3773 प्राण=65536 क्षुल्लक भव=1,67,77,216 आवलिका)
7.	30 मुहूर्त	=	1 दिन
8.	15 दिन	=	1 पक्ष
9.	2 पक्ष	=	1 मास
10.	2 मास	=	1 ऋतु
11.	3 ऋतु	=	1 अयन
12.	2 अयन	=	1 वर्ष
13.	84 लाख वर्ष	=	1 पूर्वांग
14.	84 लाख पूर्वांग	=	1 पूर्व = 70560 अरब वर्ष
15.	1 पल्योपम	=	असंख्य वर्ष,
16.	10 कोड़ा–कोड़ी पल्योपम	=	1 सागरोपम
17.	10 कोड़ा–कोडी सागरोपम	=	1 अवसर्पिणी अथवा 1 उत्सर्पिणी
18.	अवसर्पिणी+उत्सर्पिणी	=	1 कालचक्र,
19.	अनंत कालचक्र	=	1 पुद्गल परावर्त

पल्योपम : 1 योजन (4800 कि.मी.) लंबा, चौड़ा एवं गहरा एक कूप। उसे सात दिन की उम्र के युगलिक के एक–एक केश के असंख्य टुकड़ों से इस तरह ठसाठस भर दिया जाए कि उसके ऊपर से चक्रवर्ती की विशाल सेना कूच कर जाए तो भी उसके ठोसपन में किंचित् मात्र अंतर न आये। उसमें से सौ–सौ वर्ष के अंतर से केश का एक–एक टुकड़ा निकाले और कूप पूरा खाली हो तब तक जितनी अवधि लगे उस अवधि को सूक्ष्म अद्धा पल्योपम कहते हैं। उससे आयुष्य की गिनती होती है।

काल का स्वरूप

अन्तर्मुहूर्त (तीन प्रकार) :-

1. **जघन्य अन्तर्मुहूर्त** :- 2 से 9 समय का काल।

2. **मध्यम अन्तर्मुहूर्त** :- 10 समय से मुहूर्त में दो समय शेष रहे वहाँ तक का काल।

3. **उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त** :- मुहूर्त में मात्र एक समय शेष रहे वैसा काल।

प्रश्न : कालचक्र किसे कहते हैं ?

प्रत्येक कालचक्र के 10–10 कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नामक दो समान भाग होते हैं। जिस काल में सुख, आयुष्य, शरीर, वर्ण आदि वस्तुओं का अवसर्पण अर्थात् उनकी क्रमशः हानि होती है, उसे अवसर्पिणी काल और जिसमें उक्त वस्तुओं का उत्सर्पण अर्थात् क्रमशः वृद्धि होती है उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। सामान्य भाषा में हम उसे गिरता और चढ़ता काल कह सकते हैं।

अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी और उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी, इस तरह यह क्रम चक्र की भाँति ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जाने वाला होने से उसका 'कालचक्र' नाम सार्थक है।

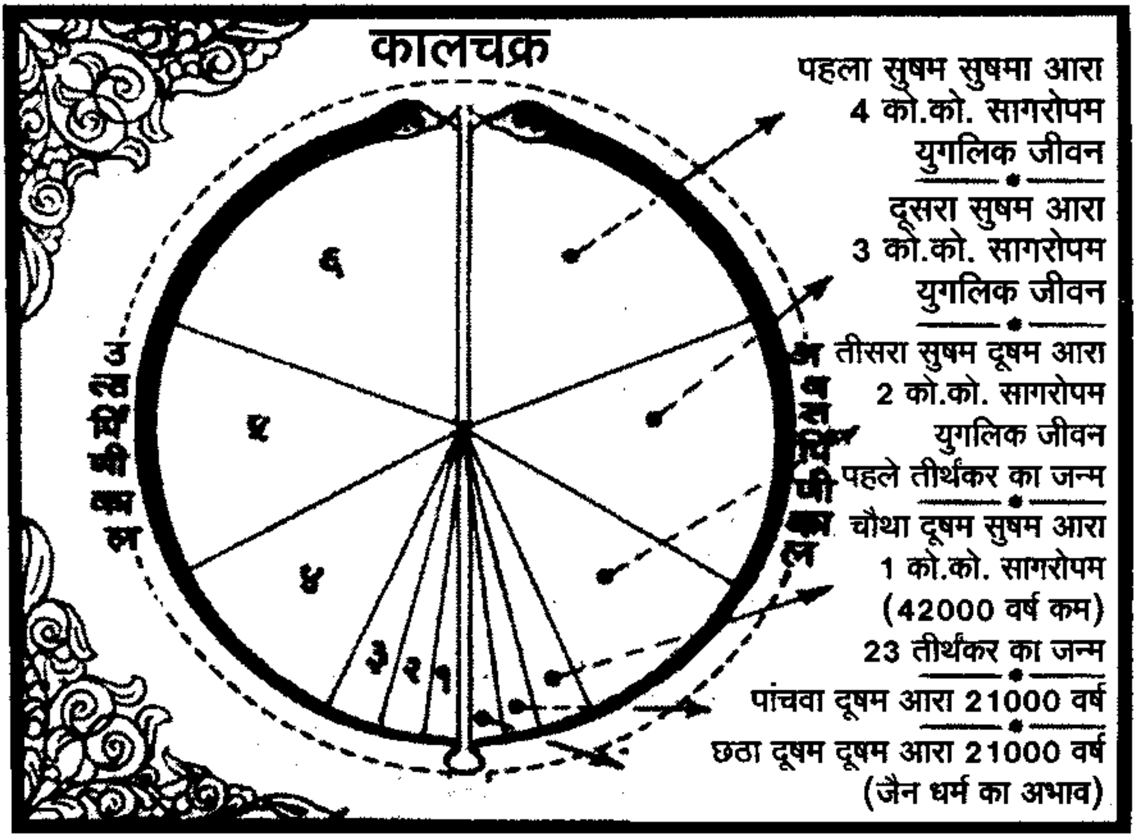

प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के छःविभाग होते हैं। उनके नाम और माप निम्न प्रकार से हैं:-

क्रम.	छः विभाग के नाम	अवसर्पिणी के छः विभाग के माप	उत्सर्पिणी के छः विभाग के माप	छः विभाग के नाम
1.	सुषमा–सुषमा	4 कोटाकोटी सागरोपम	21 हजार वर्ष	1. दुषमा–दुषमा
2.	सुषमा	3 कोटाकोटी सागरोपम	21 हजार वर्ष	2. दुषमा
3.	सुषमा–दुःषमा	2 कोटाकोटी सागरोपम	42000 वर्ष न्यून 1 कोटाकोटी सागरोपम	3. दुषमा–सुषमा
4.	दुःषमा–सुषमा	42000 वर्ष न्यून 1 कोटाकोटी सागरोपम	2 कोटाकोटी सागरोपम	4. सुषमा–दुषमा
5.	दुःषमा	21 हजार वर्ष	3 कोटाकोटी सागरोपम	5. सुषमा
6.	दुःषमा–दुःषमा	21 हजार वर्ष	4 कोटाकोटी सागरोपम	6. सुषमा–सुषमा

छः द्रव्यों की 23 द्वारों से विचारणा

1. **परिणामी** :– (2) जिसका परिवर्तन हो अथवा जो अन्य अवस्था को प्राप्त करे, उसे परिणामी कहते हैं। (जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय) जीव :–चार गति में फिरना, समयानुसार बाल, युवान, वृद्ध होना ये जीव के परिणाम हैं। पुद्‌गल :– दूध से दही, छाछ आदि पुद्‌गल का परिणाम है।
2. **अपरिणामी** :– (4) जिसमें परिवर्तन न हो।
(धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल)
3. **जीव** :– (1) जिसमें चेतना हो। (जीवास्तिकाय)
4. **अजीव** :– (5) जिसमें चेतना न हो।
(धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल)
5. **मूर्त** :– रूपी = पुद्‌गल
6. **अमूर्त** :– अरूपी = आकाश, जीव
7. **सप्रदेशी** :– (5) जिसमें प्रदेश हो।
(जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय)
8. **अप्रदेशी** :– (1) जिसमें प्रदेश न हो। (काल)
9. **एक** :– (3) जो संख्या में एक है।
(धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय)
10. **अनेक** :– (3) जो संख्या में अनेक अनन्त है।
(जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय, काल)

11. क्षेत्र :- (1) जिसमें पदार्थ रहे = रखने वाला।
(आकाशास्तिकाय=आकाश)

12. क्षेत्री :- (5) जो क्षेत्र (आकाश) में रहे=रहने वाला।
(जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल)

13. सक्रिय :- (2) जो गति आदि क्रिया करने में समर्थ हो।
(जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय)

14. अक्रिय :- (4) जो गति आदि क्रिया करने में असमर्थ हो।
(धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल)

15. नित्य :- (4) जिसका परिवर्तन न हो, अर्थात् सदा एक जैसा रहे। (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल)

16. अनित्य :- (2) जिसका परिवर्तन हो अर्थात् एक अवस्था में सदा काल के लिए न रहे।
(जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय)

17. कारण :- (5) जो द्रव्य अन्य द्रव्य के कार्य में सहायक (निमित्त) बने।
(धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल)

18. अकारण :- (1) जो स्वयं कर्ता होने से अन्य द्रव्य के कार्य में उपकार नहीं होता। (जीवास्तिकाय)

19. कर्ता :- (1) जो कार्य करने में स्वतंत्र हो अथवा जो अन्य द्रव्य का उपभोक्ता हो। (जीवास्तिकाय (=जीव))

20. अकर्ता :-(1) जो न तो कार्य करने में स्वतंत्र हो और न किसी द्रव्य का उपभोग करता हो।
(धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल)

21. सर्वगत :- (1) जो सर्वव्यापी (लोकालोक व्यापी) हो।
(आकाशास्तिकाय)

22. देशगत :- (5) जो देश लोक में ही है। अलोक में नहीं है।
(धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल)

23. परस्पर अप्रवेशी(6) एक दूसरे द्रव्य में रूपान्तर होना, उसको 'प्रवेश' कहते हैं। ऐसा न होना वह 'अप्रवेश' है। सभी द्रव्य लोक में एक दूसरे के साथ रहते हुए भी वे सब अपने स्वरूप में अवस्थित रहते हैं। एक दूसरे के स्वरूप को धारण नहीं करते। इसलिये छः द्रव्य परस्पर अप्रवेशी हैं।

C. सदाचार गुण

जीवन शणगार सद्गुण

पूज्यपाद1444 ग्रंथ के प्रणेता **आचार्य देव श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराजा** ने जीवन मे महत्त्वपूर्ण सिद्धि हांसिल करने एवं आध्यात्मिक जीवन के सृजन हेतु नींव स्वरूप अनेक सद्गुणों का वर्णन योगबिंदु, धर्म बिंदु आदि ग्रंथों मे किया है। गुणवैभव के मूलाधार ऐसे कुछ गुणों का वर्णन यहां पर किया जा रहा है।

1. परिहर्तव्यो अकल्याणमित्र योग: कुमित्रों का त्याग। सज्जन मित्र नही होगा तो चल जायेगा, पर कुमित्र का संग तो हरगिज नही चलेगा। अध्यात्मपथ पर जीवन की उत्क्रांति के चाहको को सर्व प्रथम कुमित्र संग का संपूर्ण त्याग करना होगा।

होटेल, मोटेल, क्लब, पब, कॉफी हाऊस इन अनाचारों के अड्डों मे ले जाने वाला यह बेड फ्रेंड सर्कल ही है। आज का युवा वर्ग पत्नी पसंद करने में जितनी सतर्कता रखते हैं, उससे ज्यादा सावधानी मित्र पसंद करने मे रखनी चाहिए।

जीवन का सबसे ज्यादा कीमती समय युवानी का है। अगर इसे व्यसनी स्वार्थी मित्रों के साथ पूरा कर दिया तो शेष जीवन कैसा होगा?, वह स्वयं सोचे विचारे।

मूरख, बालक, याचक, व्यसनी, कारु ने वली नारुजी ।
जो संसारे सदा सुख वांछो तो, चोरनी संगत वारुजी ।।

अगर संसार में सदा सुख चाहते हो तो मूरख की दोस्ती, बालक की मित्रता, व्यसनी, भिखारी, कारू यानि जो पत्थर–लोहा वगेरे तोडने वाले, जो लगभग दिल के कठोर होते है– वैसों कि, नारू अर्थात जो खराब धंधे करते हो, हल्की मनोवृत्ति धारण करते हो, संकुचित व्यवहार वाले हो वैसों की सोहबत सर्वदा त्याज्य है। और अंत मे चोर, इन सबकी मित्रता वर्ज्य कही गई है।

2. सेवितव्यानि कल्याणमित्राणि: कल्याणमित्र का संग करना। हाँ, हम शायद मित्र बनाये बिना नहीं रह सकते तो जीवनसृष्टिको सुसज्ज करे वैसे कल्याण–हितैषी–परार्थी मित्रों को पसंद करे। इस बात के लिये शास्त्रों में अभयकुमार, नागकेतु आदि के उदाहरण प्रसिद्ध है।

3. गुरू–देवादि पूजनम् : बड़ों का पूजन: इस गुण में ग्रंथकारश्री ने गुरुवर्ग एवं देव के पूजन की बात की है। गुरुवर्ग में – माता, पिता, कलाचार्य, वरिष्ठ स्वज्ञातिजन, धर्मोपदेशक, वयोवृद्ध का समावेश होता है। इन 6 की भक्ति, सेवा, औचित्य ध्यान में लेना चाहिए, देवों में परम करुणावत्सल तीर्थंकर को ग्रहण करना चाहिये।

4. पात्रे दीनादिवर्गे दानम्: सुपात्र दान एवं दीन, गरीब आदि को दान अमीरी की

सार्थकता है। दान देनेवालों की दानवीरता सुंदर होनी चाहिए तो दान वरदान बनके रहता है। दान करते वक्त अहोभाव और दान करने के पश्चात अनुमोदना भाव जरूरी है।

ध्यान में लेने जैसा है कि यहां तीसरे नंबर के गुण में देव–गुरू आदि का पूजन निर्दिष्ट है, उसका कारण यह है कि आचरण यह साधना का शरीर है, जबकि देव–गुरू भक्ति सेवा यह उस शरीर का श्वास है। श्वास बिना शरीर निष्प्राण निस्तेज है। आचरण विहीन विचारों का प्रस्तुतिकरण मात्र प्रदर्शन है जबकि आचरणयुक्त विचारणा, उच्चारण वह आत्मदर्शन है। इस आचरण का भी प्राण देव–गुरु पूजन है।

अतः देव–गुरू भक्ति श्वास रूप होने से उसकी प्रधानता यहाँ बतलाई गई है।

5. सदाचार पालनम्: शिष्टाचार का पालन । इस सदाचार के 18 प्रकार हैः–

लोकापवादभीरुत्वं, दीनाभ्युद्धरणादरः।
कृतज्ञता सुदाक्षिण्यं, सदाचारः प्रकीर्तितः॥ 1॥

सर्वत्र निंदासंत्यागो, वर्णवादश्च साधुषु।
आपद्यदैन्यमत्यन्तं, तद्वत्संपदि नम्रता॥ 2 ॥

प्रस्तावे मितभाषित्वमविसंवादनं तथा।
प्रतिपन्नक्रिया चेति कुलधर्मानुपालनम्॥ 3॥

असद्व्यय परित्यागः, स्थाने चैव क्रिया सदा।
प्रधानकार्ये निर्बन्धः, प्रमादस्य विवर्जनम्॥ 4॥

लोकाचारानुवृत्तिश्च, सर्वत्रौचित्यपालनम् ।
प्रवृत्तिर्गर्हिते नेति, प्राणैः कण्ठगतैरपि॥ 5॥

1. **लोकोपवादभीरुत्वं**: लोक में निंदनीय प्रवृत्ति का त्याग, दारू सेवन, परस्त्रीगमन, बडी अनीति, स्वजन, सज्जनो के प्रति दुर्व्यवहार, इत्यादि लोक निंदनीय माना गया है। इन सब निंदनीय प्रवृत्तियों से लोक समाज में उपहास एवं महा अपमान का सामना करना पडता है। अतः एसे महा अधर्म के कार्यों से दूर रहे।

2. **दीन लोक का उद्धार**: विकट परिस्थिति से गुजरते हुए दीन, अनाथ, बेरोजगारी का सामना करने वाले, मानव एवं अबोल पशु आदि की सहायता करना भी सदाचार का एक प्रकार है।

3. **कृतज्ञता**: अपने उपकारियों की कद्र करे। अति गहनतम स्थिति मे भी उन उपकारीजनों के उपकार की झलक नजरअंदाज न हो जाय उसकी पूरी सावधानी रखे। कृतज्ञता ये सर्व गुणों की जनेता है।

4. **दाक्षिण्य**: दूसरे की सहायता करने में बिना सोचे ना न कहे । किसी अन्य मानव के विचार-अभिप्राय को या प्रार्थना को झट से उपेक्षित न करें। अयोग्य भी लगे तो मौन रखे या फिर शालिनता से व्यवहार करें। जिसके पास गंभीरता है, वही, यह गुण अमल में ला सकता है।

5. **सर्वत्र निंदा त्याग**: निंदा वृत्ति यानि काक वृत्ति । कौआ जैसे सड़े फल, विष्टा आदि में चोंच डालता है, वैसे ही निंदक वृत्ति वाले लोग दूसरों के मात्र दोषों को देखकर उसका अवर्णवाद करने में लग जाते है। ऐसी निन्द्य वृत्ति का त्याग करें।

6. **वर्णवादश्च साधुषु:** साधु एवं सज्जन पुरुषों के गुणों का प्रगटीकरण कीर्तन करना। निंदात्याग एवं गुणानुवाद ये दोनो एक सिक्के के दो पहलु हैं।

7. **अवसर पर बोलना एवं अल्प बोलना**: बोलना यह औषध है तो मौन यह स्वास्थ्य है। अगर स्वास्थ्य बिगडा हो तो ही औषध सेवन करे। मौन की सुरक्षा के लिए वचन का उच्चारण हो उसमें वाणी की शोभा है। जैसे सही मौसम में बोया गया बीज फलदायी बनता है वैसे अवसर पर उच्चरित अल्प बोल भी लाभदायी होते है।

8. **आपत्ति में अदीन**: जैसे ऋतु परिवर्तन स्वभाविक है वैसे जीवन की परिस्थितियों का परिर्वतन एक स्वभाविक सिलसिला है। आपत्तियाँ नासमझ को दुखी करने में सफल हो जाती है परंतु समझदार विवेकी तो उन आपत्तियों से महत्व की शिक्षा ग्रहण करता है, और उन विषमताओं मे दीन नहीं बनता।

9. **संपत्ति में नम्रता**: आपत्ति में प्रसन्नता रखना शायद आसान है परंतु तरक्की में (अभ्युदय में निरहंकारिता) नम्रता का गुण दुष्कर है।

10. **वचन बद्धता**: प्रारंभ किये हुए कार्य को, दिये गये वचन को संकट में भी निभाना। किसी सुभाषितकार ने कहा भी है ***"अनारम्भो ही कार्याणां प्रथमं बुद्धिलक्षणम्"*** यानि बुद्धि का प्रथम लक्षण कार्य का आरंभ ही नही करना, परंतु दूसरा लक्षण ***'आरब्धस्यान्तगमनम्'*** आरंभ किए गये कार्य को पूर्ण करना है ।

11. **कुलधर्मानुपालनम्:** कुल परंपरा से चले आ रहे शिष्ट पुरुष आचरित रीति-नियमों को सुदृढ रूप से अपनाना। जैसे कि ब्याह, शादी की सामाजिक व्यवस्थाओं की मर्यादा को उल्लंघन न करना। मांस भक्षण, अपेय का पीना इत्यादि कुल के विरुद्ध हैं, जो संपूर्णतया त्याज्य है।

इन्टरनेट, मोबाईल, जींस, रफशुस, बार, क्लब आदि मे अपनी महत्वपूर्ण शक्तिओं का बलिदान करना यह अपने कुलधर्म पर महाकलंक है। आर्यभूमि में चार चाँद लगाने वाले संतजीवन का प्रारंभिक केन्द्र बिंदु इस कुलधर्म का पालन है।

12. असद्‌व्यय परित्याग: जैसे मिल्कियत बनाने के लिए कमाना जरूरी है वैसे ही फिजूल खर्च का त्याग भी अनिवार्य है। आज का मानव अगर अपने स्वैच्छिक भोगादि वृत्तियों पर काबू रख, उन फिजूल खर्चों की सेविंग (बचत) करे तो कितनों के घर बस जाय, दारिद्र्य का निर्मूलीकरण भी अधिकांश हो जाय।

13. धन का सद्‌व्यय: पुण्य से प्राप्त संपत्ति का सही मार्ग पर सदुपयोग करने से नये पुण्य का बंध होता है। जो इस भव एवं परभव दोनो में लाभकारी है। सात क्षेत्र–जिन बिंब,जिनागम,जिन चैत्य, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका मे धन का विनियोग वह सद्‌व्यय है।

14. सफलारंभ करे: गंभीर कार्यों मे सफलता की संभावना से ही प्रवृत्त होना चाहिए। जहाँ परिणाम मे शून्यता या मात्र श्रम ही लगे वैसे व्यर्थ कार्यों मे पैर नही रखें।

15. प्रमाद का वर्जन: उत्तराध्ययन सूत्र मे पांच प्रकार के प्रमाद बताये गये है 1) कषाय 2) विषय 3) व्यसन 4) निद्रा 5) विकथा । इन पांचो प्रमादों से संपूर्ण सांसारिक दुख की परंपराए चलती है। अत: इन प्रमाद स्थानो से खूब खूब बचकर रहना चाहिए।

16. लोकाचार–अनुवृति: अपनी कुलपरंपरा में चले आ रहे रीति नियमों का उल्लंघन न करें। जैसे कि मांस, मदिरा, जुगार, शिकार, आदि पर संपूर्ण प्रतिबंधन यह अपनी कुल मर्यादा है। इसकी सुरक्षा में ही अपनी सुरक्षा है। इस लोकाचार की उपेक्षा में अंत में हमारी ही उपेक्षा है।

17. औचित्य पालन=धर्म का प्राण औचित्य है। जिस समय जो उचित हो वहाँ उस कार्य की प्रधानता रखनी चाहिये । गुरू भगवंत घर में पधारे और हम टी.वी, न्यूजपेपर में मशगूल रहते हुए उनका अभ्युत्थान, विनय न करे तो वह अनौचित्य है। ऐसे अवसर पर अपनी प्रवृत्ति गौण करके उनके सामने जाना, विदाई देने जाना आदि औचित्य है।

18. मरण काल में भी निंदित प्रवृत्ति नही=1) चोरी, 2) जुगार, 3) मांसाहार, 4) शिकार, 5) परस्त्रीगमन, 6) वैश्यागमन, 7) मदिरापान । ये 7 महापाप प्राण आकंठ हो तो भी सज्जनों को उनका सेवन नहीं करना चाहिये।

उपरोक्त 18 सदाचार के सद्गुणों से हम हमारे जीवन को शणगारे एवं एक आदर्श रूप जीवन बनाएँ।

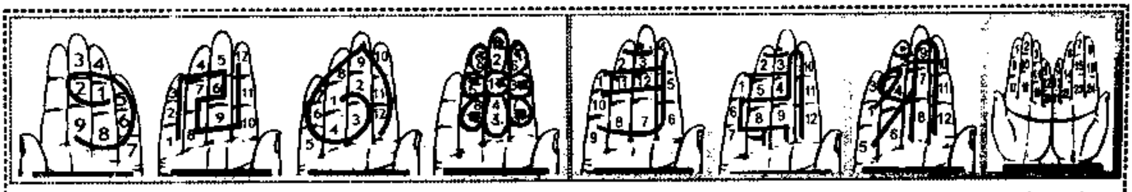

टेकणशङ्खावर्त नन्द्यावर्त शङ्खावर्त नवपदावर्त ओमकारावर्त ह्रींकारावर्त श्रींकारावर्त सिद्धावर्त

14. जैन भूगोल

A. क्या पृथ्वी घुमती है?

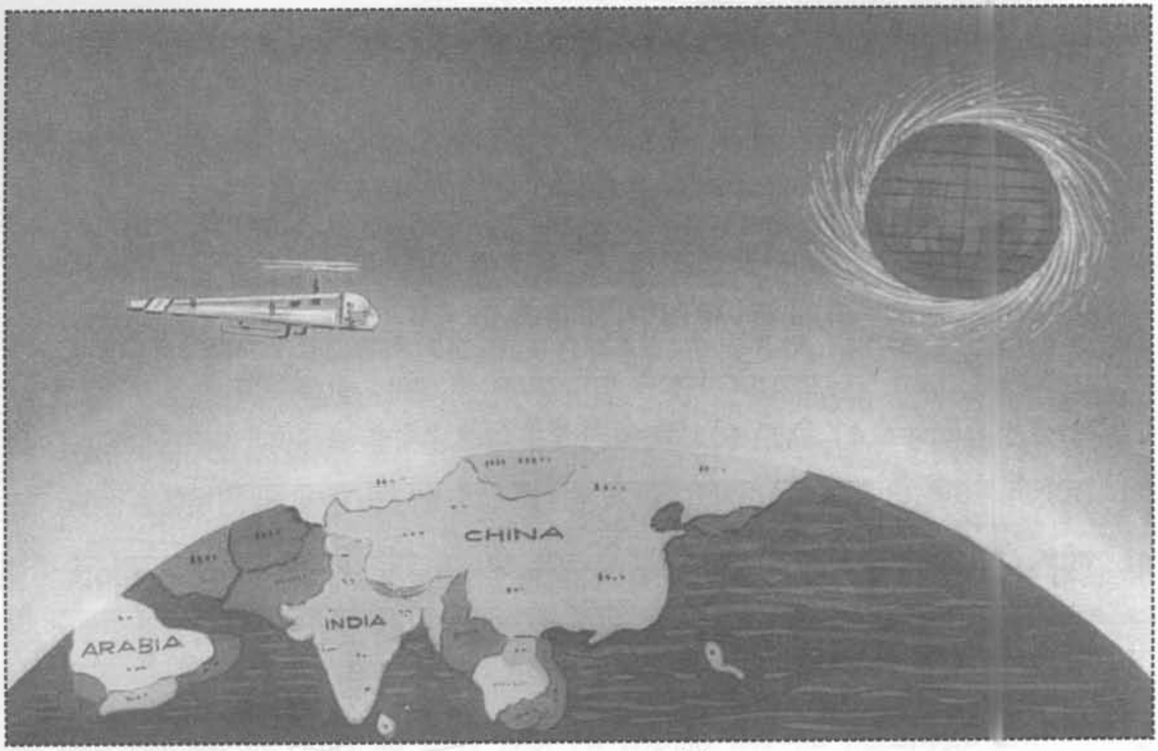

अब हम, पृथ्वी घूमती है या नहीं, इस पर विचार करेंगे।

आगे हम देख चुके हैं कि पृथ्वी गोल गेंद जैसी नहीं है। यह एक सामान्य बालक भी समझ सकता है कि सामान्यत: जो वस्तु गोल न हो वह घूम भी नहीं सकती जैसे कि लट्टू, गेंद, सिक्का अथवा थाली गोल घूम सकते हैं किन्तु लोटा, गिलास, प्याली, चौकोर डिब्बा आदि गोल वस्तु के समान नहीं घूम सकते क्योंकि उनका अक्ष नहीं है। हमें स्कूलों में पढाया जाता है कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है और वह एक गति से नहीं तीन गति से (1) अक्ष पर प्रति घंटा 1,000 मील से अधिक, (2) सूर्य के चारों ओर प्रति घंटा 66,000 मील से , (3) सूर्य के साथ (निहारिका में) प्रति घंटा 7,20,000 मील से।

एक सामान्य रूप से समझा जा सकता है कि यदि पृथ्वी इस प्रकार गति करती हो तो पृथ्वी धरातल पर के अपने मकान, पर्वत, नदी, समुद्र वगैरह तथा हम व्यवस्थित कैसे रह सकते हैं? एक दो सेकेन्ड का भूकम्प जब हाहाकार मचा देता है तब प्रति घंटा 1,000 मील की गति से पृथ्वी घूमे तो अपनी क्या हालत हो जाय?

स्कूलों में आज पढाई जाने वाली बात कि पृथ्वी घूमती है, ये मान ले तो यदि हमें अमेरिका जाना

हो तो (ऊपर का चित्र देखें) एक हेलीकॉप्टर में बैठ जावें। इस हेलीकॉप्टर को 100–200 फुट की ऊँचाई पर ले जाकर आकाश में स्थिर खड़ा कर दिया जावे। यदि पृथ्वी घूमती हो तो नीचे देखते रहें। पृथ्वी घूमते–घूमते जब अमेरिका हमारे नीचे आवे तब हेलीकॉप्टर नीचे उतार कर अमेरिका पहुँच जाय।

B. पृथ्वी फिरती होती तो?

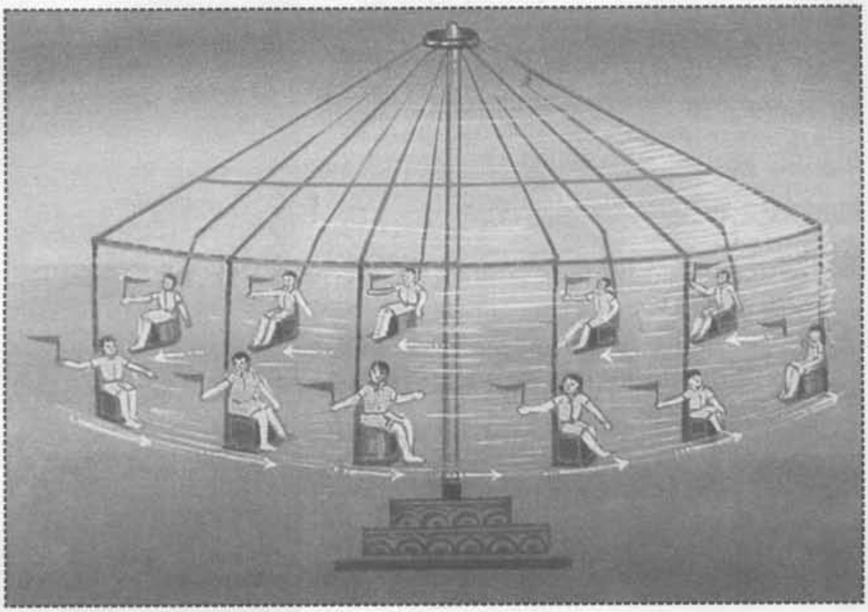

यह चित्र देखें। विद्यार्थियों को सिखाया जाता है कि चकरी में बैठे सभी बालकों की पताका जब चकरी तेजी से घूमती है तब एक ही दिशा में दिखाई देती है। हम अनुभव करते हैं कि हवा कभी पूर्व से, कभी पश्चिम से, कभी दक्षिण से कभी पूर्व उत्तर से भी आती है।

मंदिर के शिखर की ध्वजा चारों दिशा में उड़ती रहती है यही घटनाएँ बताती है कि पृथ्वी घूम नहीं रही है, नहीं तो ध्वजा मात्र पूर्व दिशा की हवा से पश्चिम दिशा में ही उड़ती। उदारहणार्थ आप गाड़ी में बैठकर (पूर्व दिशा में) जा रहे हो तो आपका रुमाल दरवाजे के बाहर हाथ में पकड़ कर रखने पर जिस दिशा में गाड़ी जा रही हो उसके विपरीत दिशा में उड़ेगा। यह अनुभव की बात है। इसी प्रकार यदि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व दिशा में घूम रही हो तो हवा के पूर्व से आने का अनुभव होना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं होता। अत: पृथ्वी घूमती नहीं है यह सरलता से समझ सकते हैं।

C. पृथ्वी घूमती नहीं है

इस चित्र को जरा गौर से देखो। उपर ध्रुव तारा है नीचे पृथ्वी का गोला है। यदि पृथ्वी सही में गोल होती तो यह ध्रुव तारा विषुववृत्त रेखा से नीचे जानेवाले को दिखाई नहीं देना चाहिए। किंतु दक्षिण ध्रुव की साहसिक यात्रा करने वाले केप्टन मील के कथन अनुसार दक्षिण में 30 अक्षांश तक ध्रुव तारा स्पष्ट दिखाई देता है।

और इसमें नीचे के चित्र को देखो। ऊपर ध्रुव तारा है तथा नीचे सूर्य के चारों ओर घूमती हुई पृथ्वी है। अब इस पर ध्यान दें। 23 डिसम्बर तथा 21 मार्च को ध्रुवतारा ठीक उत्तर दिशा में दिखाई देता है। जबकि 21 जून को पृथ्वी जहाँ होती है वहाँ से 22 डिसम्बर को 30 करोड़ किलोमीटर से अधिक दूर जा चुकी होती है।

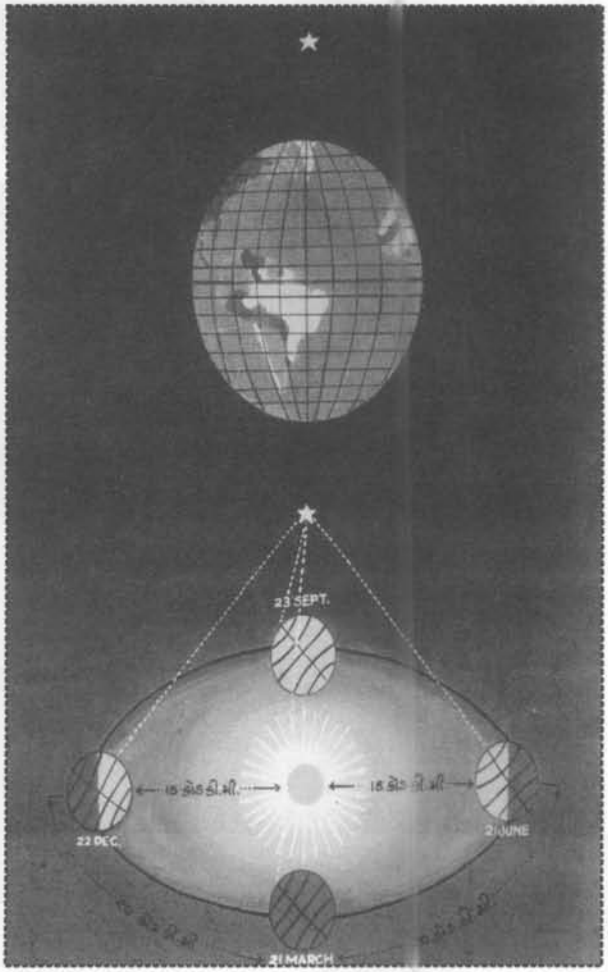

चित्र को देखते हुए सरलता से समझा जा सकता है कि 21 जून को ध्रुवतारा पृथ्वी से बाँई ओर एवं 22 दिसम्बर को पृथ्वी 30 करोड किलोमीटर दूर जाने के कारण ध्रुव तारा पृथ्वी से दाँहिनी ओर दिखाई देना चाहिए, यदि पृथ्वी घूमती हो तो।

किन्तु ध्रुवतारा तो अचल है। वह जरा भी इधर-उधर नहीं होता एवं हमेशा एक स्थान पर स्थित दिखता है। ध्रुव की कहानी में पिता के द्वारा कितनी ही कठिनाईयाँ पैदा की गई पर बालक ध्रुव तो अपने निश्चय पर अटल ही रहा, इसलिए तो ध्रुव की प्रतिज्ञा को 'ध्रुव' कहा जाता है।

समुद्र में नाविक भी ध्रुवतारे को ध्यान में रखते हुए अपने लक्ष्य पर पहुँचते है। ध्रुवतारा बारहों महिने एक ही स्थान पर दिखाई देता है इससे कहा जा सकता है कि पृथ्वी घूमती नहीं है। इसके उत्तर में कोई यह कहे कि ध्रुव तारा पृथ्वी से काफी दूर करोड़ों-अबजों मील दूर है तो इसका प्रमाण भी होना चाहिए, वो तो है ही नहीं। वैज्ञानिक एडगले ने भूगोल-खगोल पर 50 वर्षो के कठिन प्रयास एवं खोजो के बाद कहा कि पृथ्वी थाली के आकार जैसी चपटी है जिस पर सूर्य एवं चन्द्रमा घूम रहे हैं। ध्रुवतारा पृथ्वी से 5,000 मील से ज्यादा दूर नहीं है तथा सूर्य का व्यास 10 मील है। अनेक वैज्ञानिक तथ्यों से पृथ्वी का घूमना प्रमाणित नहीं होता है। सुबह वृक्ष पर से पक्षी दाने के लिए पृथ्वी से उपर आकाश में उड जाते है तथा शाम को अपने घोंसले में वापस आ जाते हैं। वे यह गणना नहीं करते हैं कि प्रति घंटे 1,000 मील की गति से पृथ्वी के घूमने से मेरा घोंसला, मेरा वृक्ष कहाँ चला गया होगा? वे तो बहुत ही सामान्य रूप से अपने घर आकर किल्लोल करते हैं। यदि पृथ्वी घूमती होती तो क्या यह संभव था?

स्पष्ट, सरल एवं साधारण बुद्धि वाले भी समझ सकें ऐसे अनेक उदाहरणों से हम समझ गये कि पृथ्वी घूमती नहीं है। अब आइये आगे बढते है।

D. रात दिन कैसे होते है

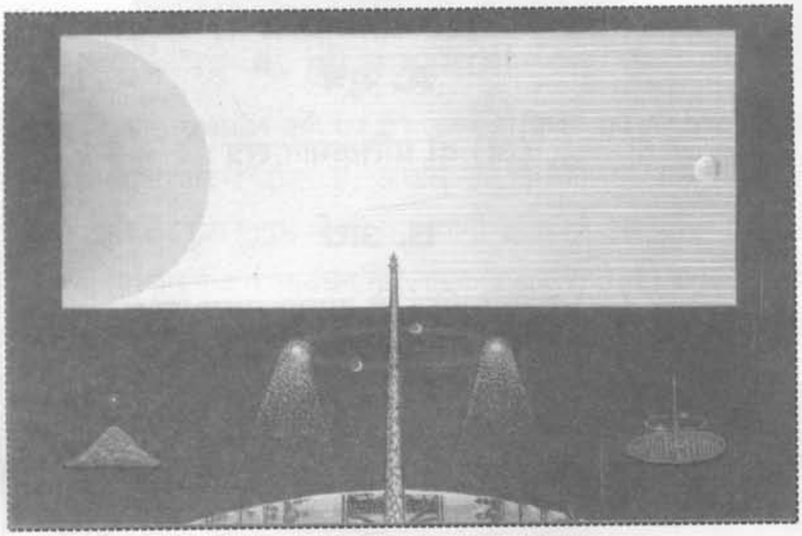

इस चित्र को ध्यान से देखिए। बांये ओर अर्धवर्तुलाकार सूर्य है, उसकी किरणें दाँई ओर जिस पर पड रही है वो मटर के दाने बराबर वह पृथ्वी है।

आधुनिक खगोलशास्त्री कहते है कि पृथ्वी का व्यास 12756 किलोमीटर तथा सूर्य का व्यास 13,92,000 कि. मीटर है। इसका यह अर्थ हुआ कि पृथ्वी सूर्य से 110 गुना छोटी है।

अब पृथ्वी का नाप करे किलोमीटर से मिलीमीटर में तथा शेष दो नाप फूट में परिवर्तित करने पर सूर्य लगभग सवा दो फुट तथा पृथ्वी साढे छ: मिलीमीटर व्यास के मटर के दाने के बराबर होगी। इसे सूर्य से 246 फुट दूर रखा जाये, तो क्या परिणाम आयेगा? क्या आप जानते हैं? जरा प्रयोग करके तो देखिये ! मटर के दाने के चारों ओर प्रकाश हो जायेगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि अपनी पृथ्वी पर चारों ओर सूर्य का प्रकाश फैला रहेगा। अंधकार का तो नाम न रहेगा। अर्थात् दिन को 12 बजे जो स्थिती होगी, वही पूरे दिन मे होगी।

पृथ्वी विशाल है तथा सूर्य बहुत छोटा है। इस कारण सूर्य जहाँ परिभ्रमण करता है, पृथ्वी के उतने ही भाग पर प्रकाश होता है। शेष पृथ्वी पर अंधकार दिखाई देता है। जैसे कि हम छोटी टार्च लेकर रात्री को सडक पर चलें तो जहाँ जहाँ टार्च का प्रकाश पडे वहाँ उजाला और जहाँ न पडे वहाँ अंधकार दिखाई देता है।

ऊपर दिये गये चित्र के निचले भाग के अनुसार जहाँ जहाँ सूर्य का प्रकाश पडता है, वहाँ दिन तथा शेष भाग में रात होती है। हमारा जंबूद्वीप 36,00,00,000 मील का है तथा सूर्य मात्र 2700 मील के विस्तार वाला है तभी प्रात:, दोपहर एवं संध्या आदि हो सकते हैं।

पृथ्वी ग्रह है इस बात को दिमाग से निकाल देना होगा।

पृथ्वी शब्द पृथु धातु के उपर से बना है। संस्कृत में पृथु का अर्थ विशाल होता है। इस कारण जंबूद्वीप तो ग्रहों, नक्षत्रों, तारों, सूर्य, चन्द्र सभी का आधार है। इन सबसे बडा है, अरबो मील विस्तृत है जिसके उपर 2 सूर्य और 2 चन्द्रमा घूम रहे हैं।

15. सूत्र एवं विधि

A. सूत्र

(अ) दो प्रतिक्रमण सूत्र

B. अर्थ

(अ) इरियावहियं से सामाइयवय जुत्तो

C. विधि

(अ) श्री राईय प्रतिक्रमण विधि **(आ) श्री देवसिअ प्रतिक्रमण विधि**

D. पच्चक्खाण

(अ) तिविहार उपवास

सूरे उग्गए, अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ, तिविहंपि आहारं, असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, पाणहार, पोरिसिं , साड्ढ पोरिसिं, मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाइ, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, पाणस्स, लेवेणवा, अलेवेणवा, अच्छेणवा, बहुलेवेणवा, ससित्थेणवा, असित्थेणवा, वोसिरइ।

(नोट:– 1 उपवास–अब्भत्तट्ठं, 2 उपवास–छट्ठंभत्तं 3 उपवास–अट्ठमभत्तं,
4 उपवास–दसमभत्तं 5 उपवास–बारसभत्तं 6 उपवास–चौदसभत्तं
7 उपवास–सोलसभत्तं 8 उपवास–अट्ठारसभत्तं 9 उपवास–वीसभत्तं)

(आ) चउविहार उपवास

सूरे उग्गए, अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ,चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थाणाभोगेणं, सहसागारेणं, परिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।।

(इ) पाणहार का पच्चक्खाण

पाणहार दिवसचरिमं, पच्चक्खाइ, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।।

16. कहानी

A. श्री वज्रस्वामी

श्री जिनशासन में आठ प्रभावक कहे गए हैं। उनमें से प्रथम प्रवचन प्रभावक कहलाते हैं। वे महाभाग श्री जिनधर्म की महाप्रभावना करते हैं, अर्थात् उनकी विलक्षण शक्ति से अनेक जीव श्री जिनशासन के प्रभाव में आते हैं। इस संदर्भ में श्री वज्रस्वामी की कथा इस प्रकार है।

मालवदेश में तुंबीवन नाम गाँव में आर्यधनगिरि नामक ब्राह्मण रहते थे। उनकी सुनंदा नामक सुंदर एवं गुण युक्त पत्नी थी। सिंहगिरि नाम के जैनाचार्य का धनगिरि को समागम होने पर उन्हें संसार की यथार्थता एवं असारता का बोध हुआ। उन्हें इतना प्रबल वैराग्य हुआ कि उन्होंने गर्भवती सुनंदा को छोडकर श्री सिंहगिरि के पास दीक्षा ले ली।

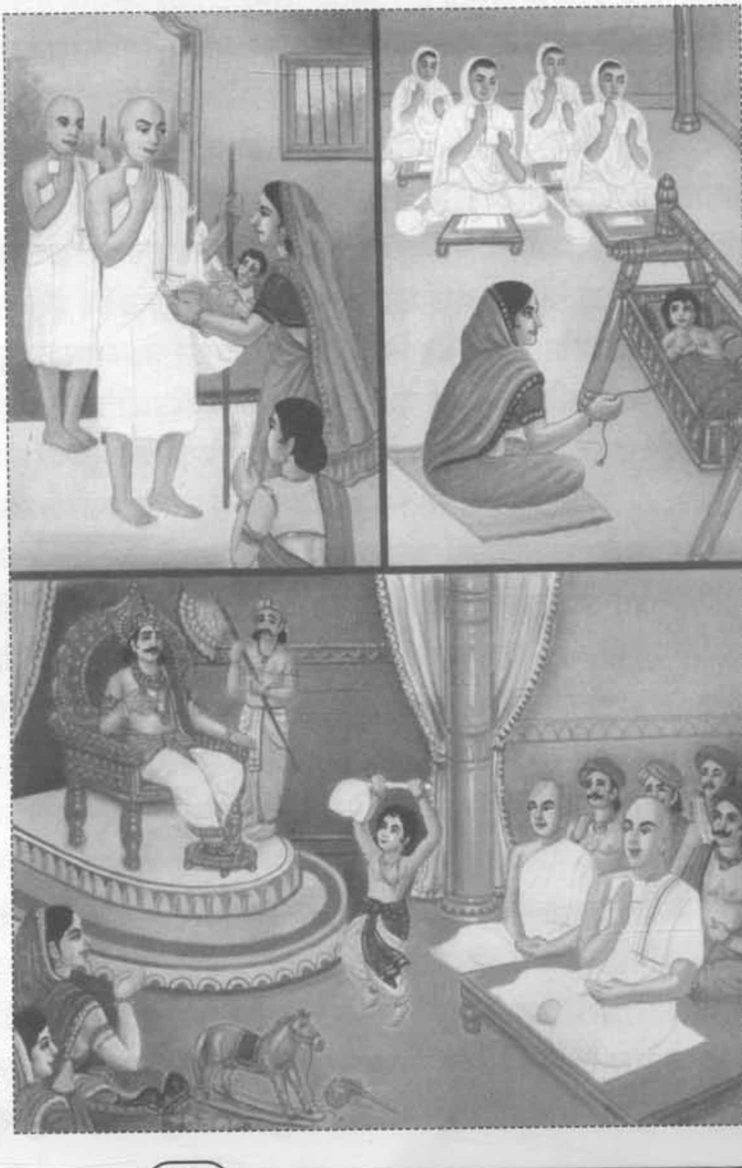

कुछ समय के बाद सुनंदा ने पुत्र को जन्म दिया। रूप-रूप के अंबार जैसा यह बालक सभी को स्वत: प्रिय लगता। आस-पास की कई सन्नारियाँ उसे क्रीडा करवाने अथवा झूला देने आती थी। एक बार कुछ महिलाएँ उसके झूले के पास बैठकर बातों में लगी। बात-बात में वे पुत्र जन्म के उत्सव की चर्चा करने लगी। कुछ ही महिनों का यह बालक कान चौकन्ने करके जिज्ञासा पूर्वक उनकी बातें सुनने लगा। उनमें से एक महिला बोली: बिल्कुल ही सच्ची बात है, धनगिरि तो बहुत ही होशियार और उत्साही थे। यदि उन्होंने दीक्षा न ली होती, तो वे पुत्र जन्मोत्सव ऐसा करते कि अपना सारा मोहल्ला दमक उठता।

दूसरी महिला बोली कि ऐसा सुंदर पुत्र हो, फिर वे कुछ भी कभी न रखते, परंतु वे तो ऐसे विरक्त, कि पुत्र के जन्म तक भी न रुके और यकायक दीक्षा ले ली।

यह सुनते ही सुनंदा के पुत्र की स्मृति तेज हो गई। "पुत्र के जन्म तक भी न रुके और दीक्षा ले ली।" ये शब्द मानो हृदय में अंकित हो गए। मैंने ये अति परिचित शब्द कहीं पहले सुने है ? इस प्रकार चिंतन करने से विस्मृति के पटल खुल गए और गतभव स्मृति पटल पर उभर आया। जातिस्मरण ज्ञान हुआ। गत भव की आराधना ताजी हो गई। समझ में आ गया कि मेरे पिताजी ने दीक्षा ले ली है। माता की मैं इकलौती संतान हूँ। माता के पास अतुल वैभव है, मुझ पर अत्यंत प्रेम और ममता है, परंतु मानव भव तो आत्मा का कल्याण करने के लिए है। ऐसे सुंदर संयोग जीव को बार बार नहीं मिलते, परंतु माता के पास से कैसे मुक्त हो सकता हूँ ? माता मुझ से तंग आ जाए तो मुझे छोडे, उसके लिए मुझे क्या करना चाहिए ? और उस छोटे बालक को परभव के ज्ञान (जातिस्मरण) से मार्ग सूझ गया। उसने उसका क्रियान्वयन किया। बालक के पास क्या मार्ग हो सकता है ? उसने रोना शुरू किया। सुनंदा के ठीक काम का या आराम का अवसर हो तभी वह बच्चा धीरे-धीरे रोना शुरू करता और कुछ ही समय में तो उसका रुदन इतना बढ जाता कि सुनंदा त्रस्त हो जाती थी। वह जैसे-जैसे उसे चुप करने का प्रयत्न करती, वैसे-वैसे उसकी आवाज अधिक बुलंद हो जाती थी। सुनंदा ने अनेक उपाय किये, बच्चा को किसी की नजर लग गई हो, अथवा कोई भूत प्रेत के प्रभाव में आया हो, ऐसा मानकर उनके निष्णातों से उसका उपचार भी करवाया, परंतु सब निरर्थक रहा। दिनभर काम करके, पुत्र की अति चिंता करके थकी हुई सुनंदा को प्रहर रात्रि बीतने पर कडी कठिनाई से नींद आती। उसने एकाध घडी की नींद ली हो कि वहाँ धीरे रहकर उसका बच्चा रोना शुरू करता, जिससे जगकर पुत्र को शांत करने के अनेक प्रयत्न करती, परंतु सारे ही प्रयत्न निष्फल रहते थे। मध्य रात्रि में रोते हुए बालक की क्षण-क्षण बढती हुई आवाज मात्र उसकी माता के लिये ही नहीं, बल्कि अडोस-पडोस में रहने वालों के लिये भी असह्य हो गई थी।

माता से छुटकारा लिये बिना कल्याण न था और अकेली पडी हुई माता की ममता के लिए एक मात्र यह पुत्र ही था। माता परेशान हो तभी ममता के वेग में अवरोध पैदा हो सकता है और इसीलिए उस बालक ने अपनी व्यवस्थित योजना को लागू किया था।

अब तो पडोसी भी कहते थे सुनंदा ! तेरे पुत्र से अब तंग आ गए है। सुनंदा कहती मैं भी त्रस्त हो चुकी हूँ, परंतु करूँ भी क्या ? ऐसे में एक दिन आर्य सिंहगिरिजी महाराज अपने शिष्य-प्रशिष्य धनगिरिजी महाराज आदि के साथ उस गाँव में पधारे। श्री धनगिरिजी महाराज अपने गुरुजी को पूछकर गोचरी के लिए प्रस्थान कर रहे थे, तब गुरुजी श्री सिंहगिरिजी आचार्य देव ने कहा, "आज भिक्षा में सचित्त अथवा अचित्त जो कुछ भी प्राप्त हो, उसे ग्रहण कर लेना।" "जैसी आपकी आज्ञा" ऐसा कहकर श्री धनगिरिजी महाराज घूमते-घूमते सुनंदा के घर आ पहूँचे। धर्मलाभ की परिचित ध्वनि सुनकर जगे हुए बालक ने व्यवस्थित रुप से रोना प्रारंभ किया। पुत्र से उकताई हुई सुनंदा बोली महाराज ! आप मजे से आत्म कल्याण की साधना कर रहे हो, परंतु मेरे तो दुःख की कोई सीमा ही नहीं रही है। इतनी सुख

सुविधा में मुझे आपके इस पुत्र ने दु:खी कर डाला है। अत: कृपया इसे आप ही ले पधारो। धनगिरिजी ने झोली फैलाते हुए कहा सुनंदा ! मैं इसे लेने के लिये तैयार हूँ, परंतु बाद में आपत्ति मत उठाना। सुनंदा बोली "नहीं ! मुझे किसी कीमत पर ऐसा पुत्र नहीं चाहिए, आप इसे खुशी से ले पधारो, मैं तो मुक्त हुई इस झंझट में से।" ऐसा कहकर उसने बालक को श्री धनगिरिजी की झोली में डाल दिया और उसी क्षण वह बालक मुस्कुरा उठा, सुनंदा भी चकित देखती रही।

धनगिरि धर्मलाभ कहकर उपाश्रय में लौटे। गुरु महाराज ने पूछा यह वज्र जैसा वजनदार क्या लाए हो ? ऐसा कहकर उनकी झोली लेकर खोली तो अंदर मजे से मुस्कुराता हुआ बालक देखा। तब से उस बालक का नाम वज्रकुमार हो गया।

धर्मिष्ठ अग्रणी श्रावक को वह बच्चा सुपुर्द कर सूचना दी गई, की इसके भाव बढे और अच्छे संस्कार पाए ऐसा वातावरण देना। उस श्रावक ने श्राविका को सुपुर्द किया और श्राविका धर्मिष्ठ होने से फुर्सत मिले तब तुरंत वज्र को लेकर साध्वीजी के उपाश्रय में ही पहुँच जाती। वहीं पर उसने झूला भी रख दिया। वज्रकुमार को वह तनिक भी दूर नहीं रखती थी। वज्र इतना सुंदर था कि स्वत: उसे दुलार करने को जी ललचाएं, कभी भी रोने का तो नाम ही नहीं।

जब भी देखो तब आनंद में पुलकता रहता था। श्राविका शांति पूर्वक सामायिकादि क्रिया करती और धर्म का अभ्यास करती थी, तब वज्र शांति पूर्वक पलने में पडा-पडा सब सुनता रहता था, तनिक भी तंग करने का तो प्रश्न ही नहीं। इस प्रकार करते-करते वज्र तीन वर्ष का हुआ। पूर्व ज्ञान के बल से तीन वर्षीय यह बालक कभी तो ऐसा बातें करता था कि श्रोता भी चकित हो जाए। उसकी वाक् छटा, ज्ञान भरी बातें, छोटी सी उम्र होते हुए भी बहुत बडी समझ, प्रसन्न मुद्रा, जब भी देखो तब ताजे खिले हुए कमल जैसी प्रफुल्लता। इन सभी विलक्षणताओं ने वज्रकुमार को चर्चा का पात्र बना दिया। सुनंदा का यह रोतड पुत्र ?? नहीं नहीं ! कैसा सुहावना, सुंदर और समझदार है ! यह बात सुनंदा के कानों तक पहुँची। उसने भी परख कर ली कि यह मेरा ही पुत्र है। मुझ अभागिन ने ऐसा मजे का, अरे हजारों में भी न मिले, ऐसा पुत्र दे दिया। दे दिया तो क्या हुआ ? जाकर अभी वापस ले आती हूँ। ऐसा सोचकर वह उपाश्रय में आई और माँग की, मेरा पुत्र मुझे लौटा दो। धनगिरिजी ने कहा – मैने तुझे तभी स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि सुनंदा ! बाद में आपत्ति मत उठाना। तब तुमने ही कहा था, नहीं रे ! मुझे ऐसा पुत्र किसी भी कीमत पर नहीं चाहिये, याद है न ? सुनंदा बोली – महाराज ! मुझे यही समझ में नहीं आता कि ऐसा पुत्र मैंने आपको क्यों दे दिया ? मुझे अपने पुत्र के बिना नहीं चलेगा, मुझे मेरा लाल लौटा दो। श्री सिंहगिरिजी और धनगिरिजी ने सुन्दा को बहुत समझाया परंतु वह न मानी।

आखिरकार सुनंदा राजदरबार में पहुँची, उसने राजा को फरियाद करते हुए कहा, मेरे पति ने तो दीक्षा ले रखी है, परंतु मेरा इकलौता पुत्र भी उनके पास है, वह मुझे वापस दिलवाइए। मैं किसके लिये जीऊँ ? राजा ने सारा वृत्तान्त सुनकर कहा, बहन घर पर आए हुए संत को तु स्वयं ही कोई वस्तु दे, फिर उस पर तेरा अधिकार नहीं रहता। सुनंदा ने कहा यह वस्तु नहीं महाराजा ! मेरा इकलौता पुत्र है, मेरे

जीवन का आधार है। कृपावतार ! कुछ भी करके मेरा पुत्र मुझे वापस दिलाइए। इस बालक के बिना मैं हर्गिज नहीं रह सकुंगी। असमंजस में पडे हुए राजा ने आखिरकार मार्ग ढूँढ कर न्याय दिया कि एक ओर माता और दूसरी ओर उसके पिता बैठें, बालक मेरे पास खडा रहेगा, उसे मैं कहूँगा कि यह तेरी माता है और ये तेरे पिता है। तुझे जिसके पास जाना है उसके पास जा। वह बालक जिसके पास जाएगा उसका होगा। बोल तुझे यह निर्णय मान्य है ? वह बोली हाँ ! महाराजा मान्य है– और सुनंदा अपने काम में लग गई।

दूसरे दिन प्रात: राजमहल में भीड उमडी। समय से पूर्व ही सुनंदा राजमहल के न्यायालय में आ पहुँची थी। सुंदर स्थान देखकर अपने आगे ही खिलौने, मिठाई और अच्छे वस्त्र जमाकर वह बैठ गई। राजा और अधिकारी भी आ गए। सभा भर चुकी थी। सारी सभा खडी हो गई, त्यागियों का सभी ने स्वागत किया। मुनि श्री ने आसन ग्रहण किया, तत्पश्चात् राजा और सभी लोग आसीन हुए। सुंदर, स्वस्थ और स्थिर ऐसा वज्रकुमार राजा के पास खडा था। सभी ने देखा कि मेवा, मिठाई, कपडे और विशेष खिलौने लेकर सुनंदा पुत्र को निरखती बैठी है। जबकि उसके सामने ही शांत, प्रसन्न और स्वस्थ मुनि श्री धनगिरिजी बैठे है, परंतु उसके पास बालक को आकर्षित करे ऐसा कुछ भी न था। सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। धीरे और गंभीर स्वर से राजा अपने पास खडे हुए बालक को कहने लगे–

वत्स, वज्रकुमार ! देख इधर तेरे लिये अति मनपसंद वस्तुएँ लेकर बैठी हुई तेरी माता है, ममता की मूर्ति है, तुझ पर उसे अपार प्रेम है। तेरे लिए सब कुछ कर डालने के लिये उसकी तत्परता है।

उधर सामने वीतराग मार्ग का वेश पहनकर बैठे हुए तेरे पिता है। वे त्याग की प्रतिमूर्ति और धर्म के अवतार है। तू स्वयं ही समझदार है, अत: मैं तुझे इतना ही कहता हूँ कि इन दोनों वत्सल माता और दयालु पिता में से तुझे जो पसंद आए उनके पास तू जा। जिनके पास तू जाएगा, उनके पास तुझे उनका बन कर रहना पडेगा।

वय के अनुरूप खूब ही ध्यान से वज्रकुमार यह सब सुनकर देख रहा था। पल भर माता को देखता था, तो दूसरी पल पिता को देखता था। एक ओर ममता–वात्सल्य की खान थी, तो दूसरी ओर असीम दया का सागर था। वज्र देखता जाता है और धीरे–धीरे आगे बढता जाता है। स्नेह बावरी माँ स्नेह से उसे अपनी ओर बुलाती है और भाँति भाँति की वस्तुएँ खिलौने दिखाती जाती है। कभी तो वह दुलार ही दुलार में राजसभा का अस्तित्व भी भूल जाती है और बैठी हुई होते हुए भी आधी खडी हो जाती है।

उधर धनगिरि के पास ऐसी चपलता न थी और बालक को आकर्षित करे ऐसी कोई वस्तु भी न थी। सुनंदा और धनगिरि के मध्य चले आ रहे वज्र को धनगिरि ने अपना रजोहरण (ओघा) ऊँचा करके बताया और गंभीर बालक आनंदित होकर उसके पास दौडा, रजोहरण लेकर नाचने लगा और उनके पास बैठकर प्रसन्नवदन से सभी को देखने लगा। आखिरकार राजा ने भी यही न्याय दिया, कि – बालक मुनिश्री के पास ही रहने का इच्छुक है, सयानी सुनंदा भी वास्तविकता को समझ गई । उसने वज्रकुमार को उमंग से दीक्षा दिलवाई और अति उत्साहपूर्वक स्वयं ने भी दीक्षा ली।

आठ वर्ष की छोटी उम्र में भी वज्रकुमार मुनि का ज्ञान वैभव आश्चर्यकारी था। वे संयम में सावधान थे। उनकी सावधानी की परिक्षा के लिये उनके पूर्वभव के मित्रदेव ने माया फैलाई।

एक बार श्री सिंहगिरिजी महाराज अपने समुदाय के साथ विहार कर रहे थे, वहाँ अचानक बादल छा गए और वर्षा होने लगी। एक विशाल घने वृक्ष के नीचे सभी आकर खडे रहे। निकट में ही किसी बडे सार्थवाह का पडाव, तंबू दिखाई पडे, आहार का समय हो चुका था। परंतु अभी तक रिमझिम वर्षा हो रही थी। मुनि श्रेष्ठ स्वाध्याय ध्यान में जुट गए थे। वहाँ एक सार्थवाह ने आकर वंदन पूर्वक अति नम्र प्रार्थना की कि मेरा पडाव यहाँ पास ही है, वर्षा भी रुक गई है, आहार का अवसर हो चुका है, कृपालु ! दया करके मेरे आवास पर पधार कर इसे पावन करें। आचार्य महाराज ने बालमुनि वज्र को गोचरी जाने के लिये कहा। वज्रमुनि सार्थेश के साथ उसकी छावनी में बहरने के लिये गए। सार्थवाह ने भी अति भावपूर्वक घेवर के थाल मँगवाए और बहरने का आग्रह किया।

सदैव सजग और सावधान वज्रमुनि को उस सार्थपति में कुछ विलक्षणता दिखाई दी। ध्यान पूर्वक देखने पर उन्हें लगा कि ये लोग मानव नही, बल्कि देवता लगते है। अरे ! इनकी आँखों की पलके भी नहीं झपकती। निश्चित रूप से ये तो देवता ही हैं। देवदत्त भिक्षा तो अकल्प्य होती है। वे लौटने लगे। देव को पता चल गया कि वज्रमुनि में अद्भुत सावधानी है। देखते ही मुँह से लार टपकने लगे ऐसे सुमधुर सौरभ युक्त घेवर पर उन्होंने दृष्टि भी नहीं डाली। धन्य साधु ! धन्य साधुता ! देव ने प्रकट होकर उनके पूर्वभव की मित्रता की बात कही, उनकी बहुत प्रशंसा की और वैक्रिय रुप बना सके ऐसी विद्या उन्हें आग्रहपूर्वक दी। कुछ समय के पश्चात् उस देव ने वैसा ही इन्द्रजाल पुन: प्रस्तुत किया और वज्रमुनि को कद्दूफल की मिठाई (कोलापाक) बहराने लगा। परंतु अति सतर्क वज्रमुनि परिस्थिति को समझ गए और बिना गोचरी लिए ही वे लौटने लगे, कि वही देव प्रकट होकर उनके चरणों में नतमस्तक हुआ। उनकी साधुता की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगा। उन्हें तपोबल से क्षीराश्रव आदि अनेक लब्धियाँ प्राप्त हुई थी। उनमें आश्चर्य उत्पन्न करे ऐसी ज्ञान की गरिमा थी।

एक बार सभी साधु-महाराज बाहर गए हुए थे। वज्रमुनि ने मध्य में अपना ऊँचा आसन जमाकर आसपास अन्य साधु-महाराजाओं के आसन जमाए। स्वयं सभी को वाचना देते हो, इस प्रकार अपूर्व छटा से अस्खलित रूप से स्पष्ट उच्चारणपूर्वक सूत्र पाठ बोलने लगे। बाहर से आए हुए गुरु महाराज ने यह अनोखा दृश्य देखा और देखते ही रह गए। वज्रमुनि की अप्रितम प्रतिभा देखकर वे आनंदाश्चर्य महसूस कर रहे थे। योग्य पात्र और व्यक्तित्व जानकर गुरू महाराज ने वज्रमुनि को गहन अध्ययन करवाया। वे दसपूर्वी और अति अल्प वय में आचार्य हुए। वे प्रतिदिन 500 साधु महाराजों को आगम की वाचना देते थे। उनकी वाणी में कोई गजब की मधुरिमा थी कि सुनते ही मानो हृदय में अंकित हो जाती थी, उनका प्रवचन सुनने के लिए स्पर्धा होती थी। अनेक जीव प्रतिबोध पाते, व्रत-महाव्रत स्वीकार करते थे।

श्री वज्राचार्य की कीर्ति की सौरभ रजनीगंधा के पुष्प की तरह सभी दिशाओं में फैलने लगी। श्रावक-श्राविकाओं के उपाश्रयों में श्री वज्रसूरिजी की पुण्य प्रतिभा, ज्ञान गरिमा, सौंदर्य युक्त स्वस्थता,

अद्वितीय प्रभावकता और अपनी ही लाक्षणिकता आदि गुणों का गान करते हुए साधु--साध्वी भी तृप्त नहीं होते थे। एकबार उन्होंने ज्ञानबल से जाना कि महादुष्काल पडेगा, उन्होंने तुरंत ही साधु समुदाय को अच्छे प्रदेश में विहार करवाया। उसमें अपने पट्टधर वज्रसेन मुनि को अच्छे समारोह पूर्वक आचार्य पद देकर बताया कि यहाँ की जनता अन्न के अभाव की महा व्यथा भोगेगी, परंतु जिस दिन एक लाख मुद्राओं के व्यय से एक हांडी अन्न पकाया जाएगा, उसके दूसरे दिन से ही अन्न सुलभ होगा इत्यादि समझ और हितशिक्षा दी। उन्होंने वैक्रिय शक्ति से एक चद्दर विकुर्वित की, उस पर सकल संघ को बिठाकर आकाशगामिनी विद्या से वे जिस प्रदेश में अन्न-जल सुलभ थे, वहाँ गए। सभी अपने- अपने योग्य काम में लग गए और धर्माराधना करने लगे। उस प्रदेश में बौद्धों का बडा प्रभाव था। राजा और प्रजा सभी बौद्धधर्म में मानने वाली थी। नवागुन्तुक जैनों को वीतराग देव की पूजा के लिये वे पुष्प नहीं देते थे, फिर भी लौंग अथवा महँगे पुष्प लेकर भी कार्य चलाते थे। ऐसा करते-करते महापर्व पर्युषण पधारें।

अब तो पुष्प के बिना कैसे चलेगा ? परंतु राजा ने जैनों को पुष्प न देने का आदेश दिया। संघ व्यथित हुआ और संघ ने जाकर श्री वज्रस्वामी को प्रार्थना की कि ऐसे महान् दिनों में भी प्रभुजी की पुष्पपूजा का हमें लाभ नहीं मिलेगा क्या ? संघ की प्रार्थना से श्री वज्रस्वामी आकाशगामिनी विद्या से हिमवंत पर्वत पर स्थित महालक्ष्मी देवी के पास गए। देवी ने देखते ही देखते विस्मय में डाल दे ऐसे कमल दिये। तिर्यक्जृंभक देव ने भी अन्य लाखों पुष्प दिये। वे सभी पुष्प वैक्रीय लब्धि से बनाए हुए विमान में लेकर वे बुद्धनगरी के प्रांगण में आकाश में से उतरे। उनकी ऐसी शक्ति तथा सुंदर सुरभित और रंग बिरंगे पुष्प कमल देखकर प्रजा चकित हो गई। राजा के भी विस्मय का पार न रहा। उसके कारण राजा श्री वज्रस्वामी के संपर्क में आकर परम जैन बना, जिन शासन के जय-जयकार घोष के नगाडे बजने लगे। जिनशासन की जयपताका आकाश तक जा पहुँची।

इस प्रकार शासन प्रभावना करते करते अपना आयुष्य अल्प जानकर श्री वज्रस्वामी ने रथावर्त नाम पर्वत पर अनशन किया और परिणाम स्वरूप स्वर्ग में सिधारे। दस पूर्व के धारक वज्रस्वामी आठ वर्ष गृहस्थावस्था में रहकर, चवाँलीस वर्ष गुरुसेवा में व्यतीत कर छतीस वर्ष युग प्रधान के रूप में विचरण कर अठ्ठासी वर्ष का कुल आयु पूर्ण करके महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् पाँच सौ वर्ष व्यतीत होने के बाद देवत्व (मृत्य) को प्राप्त हुए।

वज्रस्वामी के शिष्य श्री वज्रसेनसूरिजी भीषण दुष्काल में विचरते हुए सोपारा नगर में पधारें। यहाँ के नगरसेठ ने दुष्काल से तंग आकर आत्महत्या करने का विचार किया। उन्होंने एक बार दस व्यक्ति भोजन कर सके उतने उत्तम चावल एक लाख मुद्राएँ खर्च करके रंधवाए। दु:ख सहन करना और अन्य का दु:ख देखना इससे तो मरना बहतर है ऐसा निर्णय करके वे एक लाख मुद्रा के चावल की हँडिया में विष डालने की तैयारी में ही थे कि वहाँ धर्मलाभ कहते हुए वज्रसेन सूरिजी महाराज पधारें।

भीषण दुष्काल में भी कमलशाली नामक अति महँगे चावल देखकर कारण पूछने पर श्रावक ने कहा, भगवन् ! यह दुष्काल अब देखा नहीं जाता, लाख मुद्राओं की यह अंतिम हँडिया चढाई है। इसमें

विष डालकर खाने की तैयारी कर रहे थे कि आप पधार गए। धन्य भाग्य! धन्य घडी प्रभो ! लाभ दो ! श्री वज्रसेन सूरि ने पूछा, क्या वास्तव में यह एक लाख की हाँडी है? तो अब विष खाने की आवश्यकता नहीं है! हमारे गुरु महाराज ने फरमाया था कि लाख स्वर्ण मुद्राओं की एक हाँडी जितना अन्न रँधेगा, उसके दूसरे दिन धान्य सुलभ होगा। और दूसरे ही दिन परदेश से अन्न के जहाज आए। समय पर वर्षा भी हुई। सर्वत्र अच्छी फसल हुई। उस सेठ ने अपनी पत्नी, इन्द्र, चंद्र, नागेन्द्र और निर्वृत्ति नाम वाले चार पुत्रों के साथ दीक्षा ग्रहण की। आगे जाकर इन चार मुनिराजों के नाम पर ऐंद्री, चाँद्री, नागेन्द्री और निर्वृत्ति नामक श्रमण शाखाएँ प्रसिद्ध हुई। श्री वज्रसेन सूरिजी भी महाप्रभावक हुए !

श्री वज्रस्वामी का ऐसा अद्‌भुत चरित्र सुनकर, हे बालकों ! आप भी श्री जिनागम के बोध हेतु उत्तम गुणों के उपार्जन हेतु सतत प्रयत्नशील रहना। और ऐसे महान आचार्य बनकर शासन की प्रभावना करना।

B. श्री नागकेतु

पूर्वभव में नागकेतु किसी वणिक का पुत्र था। बचपन में ही उसकी माता मर गई और उसके पिता ने अन्य कन्या से ब्याह किया। उस नयी आयी स्त्री को उसकी सौत का पुत्र काँटे की तरह चुभने लगा। और इस कारण कई तरह से उसे पीड़ा देने लगी। पूरा खाना न देती। घर का काम खूब कराती और मूढ़ मार मारती थी। लम्बे समय तक ऐसी पीड़ा सहते-सहते वह त्रस्त हो गया और घर छोड़कर अन्य जगह भाग जाने के लिए एक सायं घर से भाग निकला।

भागते समय नगर के बाहर निकलने से पूर्व जिनेश्वर के दर्शन करने एक मंदिर में जाकर स्तुति वंदना की और उसके चबूतरे पर बैठा था। सद्‌भाग्य से उसका एक मित्र मंदिर में से बाहर निकला और मित्र को निराश वदन से बैठा हुआ देखकर उसको पूछा,'क्यों भाई ! किस चिंता में है ?'

मित्र ने जवाब दिया, 'कुछ कहा जाय ऐसा नहीं है, अपार दुखियारा हूँ और अब त्रस्त होकर घर से भाग जाने निकला हूँ।'

श्रावक मित्र ने उसे सांत्वना देते हुए कहा,'भाई, घबराना मत। धर्म से सब कुछ ठीक हो जाता है। तप से कई कर्मों के नाश हो जाते हैं। पूर्व भव में तूने तप किया नहीं है, इसलिए तू दुःखी होता है, इसलिए तू एक अट्ठम कर।' आगामी वर्ष पर्युषण पर्व आए, तब अट्ठम तप करने का निश्चय किया; अतः घर से भागने के बदले रात्रि को वापिस घर आया। घर का दरवाजा तो बंद था इस कारण घर के बाहर घास की गंजी थी उस पर वह सो गया। परंतु मन में अट्ठम तप जरूर करूंगा ऐसी भावना करता रहा। उधर माता ने खिड़की में से देख लिया कि यह शल्य आज ठीक पकड़ में आया है। गंजी को आग लगा दूं तो यह मर जायेगा, और लम्बे समय से इसका काँटा निकालने की इच्छा है जो आज पूरी हो जायेगी। ऐसा विचार करके घोर रात्रि में घास की गंजी को आग लगा दी। बाहर का पवन तथा अग्नि का साथ... कुछ ही देर में गंजी चारों और से जल गई और वह वणिकपुत्र जिंदा ही जलकर राख हो गया। परंतु मरते-मरते भी अट्ठम तप करना है ऐसी भावना आखिरी क्षण भी रही।

वहाँ से मरकर चन्द्रकान्त नामक नगरी में विजयसेन नामक राजा के राज्य में श्रीकांत नामक सेठ के यहाँ उसकी सखी नामक भार्या की कोख से पुत्र रत्न के रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम नागकेतु पड़ा।

यहां उसके माता-पिता बड़े धर्मशील थे और पर्युषण आ रहे होने से एकांत में अट्ठम तप करने की बातें हुई। यह बात सुनकर नागकेतु को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और उस ज्ञान के बल से अपना पूर्वभव जाना। अट्ठम तप करना है, अवश्य करना है, उसका स्मरण हुआ।

इस भावना को सफल करने के लिये उसने भी पर्युषण में अट्ठम तप प्रारंभ किया। ताजे जन्मे हुए नागकेतु का शरीर निरा कोमल था। उसकी आत्मा ज्ञान प्रकट होने से बलवान थी, परंतु शरीर में इतना बल कहाँ था। दूध न पीने से उसका शरीर क्षीण होने लगा। उसके माता-पिता को खबर नहीं है कि बालक ने अट्ठम का तप किया है सो स्तनपान करता नहीं है, पानी भी लेता नहीं है। वे अनेक उपचार करने लगे लेकिन यह न तो स्तनपान करता न दवा पीता। फलस्वरूप कमजोरी इतनी बढ़ गई कि बालक मूर्च्छा पा गया। मूर्च्छा प्राप्त बालक को लोगों ने मरा हुआ मान लिया और उसे भूमि में गाढ़ दिया।

अपना पुत्र मर गया ऐसा समझे हुए सेठ को बड़ा आघात लगा। सेठ मूल तो निःसंतान थे। कई मनौतियों के बाद यह पुत्र हुआ था। वह मर गया है यह जानकर उनको आघात लगा, वो आघात सहन न होने के कारण बालक के पिता की भी मृत्यु हो गई।

उस काल में राज्य में ऐसा कानून था कि पुत्रहीन का धन राजा ग्रहण कर लेता था। कोई भी व्यक्ति मर जाता और यदि उसे पुत्र न होता तो उसके धनादिक का मालिक राजा बनता राज्य के कानून अनुसार सेठ का धन लेने के लिये राजा ने अपने सेवकों को सेठ के घर भेजा। यहाँ बना ऐसा कि बालक के अट्ठम तप के प्रभाव से धरणेन्द्र का आसन कांप उठा। अपना आसन कम्पने से धरणेन्द्र ने ज्ञान का उपयोग किया और सब बात समझ जाने से धरणेन्द्र वहाँ आ पहुँचा। पहले भूमि में रहे बालक पर अमृत छिड़ककर आश्वासन दिया और तत्पश्चात् ब्राह्मण का रूप लेकर जो राज्यसेवक धन लेने आये थे उन्हें सेठ का धन ग्रहण करने से रोका।

यह बात राजसेवकों ने जाकर राजा को कही, इस कारण राजा स्वयं वहाँ आये। उन्होंने आकर ब्राह्मण को राज्य का कानून समझाया और 'हमारा यह परम्परागत नियम है कि निःसंतान का धन ग्रहण करना। तो इसमें तुम क्यों रुकावट डाल रहे हो ?' ब्राह्मण ने कहा,'आपको तो निःसंतान हो उसका ही धन ग्रहण करना है न ? इसका पुत्र तो जीवित है।' राजा ने कहा,'कहाँ है ? कहाँ है जीवित वह बालक?'

ब्राह्मण ने भूमि में गड़े हुए बालक को बाहर निकालकर बताया और छाती की धड़कन बताकर समझाया कि बालक जीवित है। इससे राजा, उसके सेवक और नगर के लोग बड़े आश्चर्यचकित हुए। आश्चर्य में पड़े हुए राजा ने पूछा,'आप कौन हो ? और यह बालक कौन है ?' उस समय वेश धरे ब्राह्मण ने कहा,'मैं नागराज धरणेन्द्र हूँ। इस बाल महात्मा ने अट्ठम का तप किया है, जिसके प्रभाव से यहाँ मैं उसे सहायता करने के लिए आया हूँ।' राजा के पूछने पर धरणेन्द्र ने बालक के पूर्वभव का वृत्तांत भी कह

दे सकते क्योंकि उस पर हमारे गुरुदेव का अधिकार है। तू हमारे साथ गुरुदेव के पास चल। उन्हें तू प्रार्थना करना। उनको योग्य लगेगा तो वे तुझे भोजन करायेंगे।'

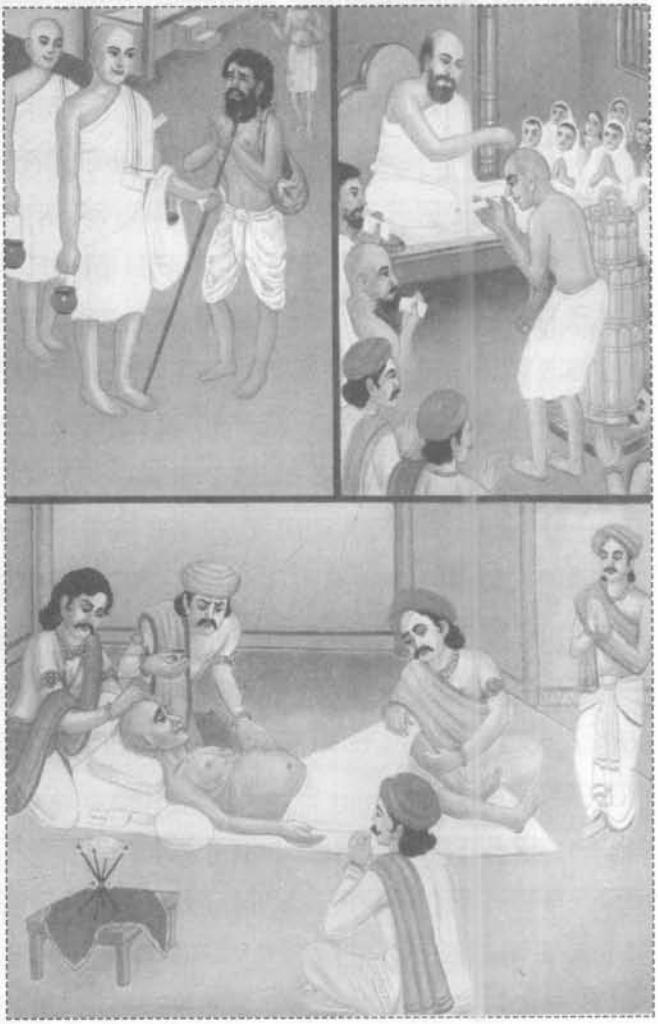

साधू के सरल और स्नेहभरे वचनों पर उस भिखारी को विश्वास बैठा। वह उन साधुओं के पीछे–पीछे गया। साधुओं ने गुरुदेव आचार्य श्री आर्यसुहस्ति को बात की। भिखारी ने भी आचार्यदेव को भाव से वंदना की और भोजन की मांग की। आचार्य श्री आर्यसुहस्ति विशिष्ट कोटि के ज्ञानी पुरूष थे। उन्होंने भिखारी का चेहरा देखा। कुछ पल सोचा, भविष्य में बड़ा धर्मप्रचारक होगा ऐसा जानकर भिखारी को कहा, 'महानुभाव ! हम तुझे मात्र भोजन दे ऐसा नहीं परंतु हमारे जैसा तुझको बना भी दे। बोल तुझे बनना है साधू ?'

भिखारी भूख से व्याकुल था, भूख का मारा मनुष्य क्या करने के लिए तैयार नहीं होता ? भिखारी साधू बनने के लिए तैयार हो गया। उसे तो भोजन से मतलब था और कपड़े भी अच्छे मिलनेवाले थे। भिखारी ने साधू बनने की हाँ कही। दयाभाव से साधुओं ने उसे वेश परिवर्तन कराकर दीक्षा दी और गोचरी के लिए बैठा दिया।

इस नये साधू ने पेट भरकर खाया। बड़े लम्बे समय के बाद अच्छा भोजन मिलने से, खाना चाहिये उससे अधिक खाया। रात को उसके पेट में पीड़ा हुई। पीड़ा बढ़ती गयी। प्रतिक्रमण करने के बाद सब साधू उसके पास बैठ गये और नवकार महामंत्र सुनाने लगे। प्रतिक्रमण करने आये हुए श्रावक भी इस नये साधू की सेवा करने लगे।

आचार्यदेव स्वयं प्रेम से धर्म सुनाने लगे। यह सब देखकर नया साधू मन में सोचने लगा कि मैं तो पेट भरने के लिये साधू बना था। कल तक तो ये लोग मेरी और देखते भी नहीं थे और आज मेरे पैर दबा रहे हैं। और ये आचार्यदेव ! कितनी करूणा है उनमें। मुझे समाधि देने के लिए वे कैसी अच्छी धार्मिक बातें मुझे समझा रहे हैं। यह तो जैन दीक्षा का प्रभाव। परंतु यदि मैंने सच्चे भाव से दीक्षा ली होती तो...।'

सुनाया। और अंत में कहा कि 'लघुकर्मी यह महापुरुष इसी भव में मुक्ति पायेगा और यह बालक भी राज्य पर बड़ा उपकार करनेवाला होगा।'

ऐसा कहकर नागराज धरणेन्द्र ने अपने गले का हार निकालकर नागकेतु को पहनाया और अपने स्थान पर लौट गया। व्याख्यानकार आचार्य श्री लक्ष्मीसूरिजी ने इस कारण से ही ऐसा कहा है कि 'श्री नागकेतु ने उसी भव में अट्ठम तप का प्रत्यक्ष रूप पाया।'

बड़ा होकर नागकेतु परम श्रावक बना। एक बार राजा विजयसेन ने कोई एक मनुष्य जो वाकई में चोर न था उसे चोर ठहराकर मार डाला। इस प्रकार अपमृत्यु पाया हुआ वह व्यक्ति मरकर व्यंतर देव बना। वह व्यंतर बना तो उसे ख्याल आया कि अमुक नगरी के राजा ने मेरे सिर पर चोरी का झूठा कलंक लगाकर मुझे मार डलवाया था, जिससे उस व्यंतर को उस राज्य पर बहुत गुस्सा आया। उस राजा को उसकी पूरी नगरी सहित साफ कर देने का निर्णय किया। इसलिये उस राजा को लात मारकर सिंहासन पर से गिरा दिया औरा खून वमन करता बना दिया। तत्पश्चात् नगरी का नाश कर डाले ऐसी एक शिला आकाश में रच दी। आकाश में बनी बड़ी शिला को देखकर नगरजन बड़ी घबराहट में गिर पड़े। श्री नागकेतु को चिंता हुई कि, ''यह शिला यदि नगरी पर गिरेगी तो महा अनर्थ होगा। नगरी के साथ जिनमंदिर भी साफ हो जायेगा। मैं जीवित होऊँ और श्री संघ के श्री जिन मंदिर का विध्वंस हो जावे यह कैसे देख सकूँ ?' ऐसी चिंता होने से श्री नागकेतु जिनप्रासाद के शिखर पर चढ़ गया और आकाश में रही शिला की ओर हाथ किया।

श्री नागकेतु के हाथ में कितना बल हो सकता हैं? परंतु वह ताकत उनके हाथ की न थी, वह ताकत उनके प्रबल पुण्योदय की थी। उन्होंने जो तप किया था उस तप ने उनको ऐसी शक्ति का स्वामी बना दिया था कि उनकी इस शक्ति को वह व्यंतर सहन न कर सका। इसलिए व्यंतर ने तुरंत अपनी रची हुई शिला को स्वयं ही समेट लिया और आकर नागकेतु के चरणों में गिर पड़ा। श्री नागकेतु के कहने से उस व्यंतर ने राजा को भी निरुपद्रव किया।

एक बार श्री नागकेतु भगवान की पूजा कर रहे थे और पुष्प से भरी पूजा की थाली अपने हाथ में थी। उसमें एक फूल में रहे सर्प ने उन्हें काटा। सर्प के काटने पर भी नागकेतु जरा से भी व्यग्र न हुए। परंतु सर्प काटा है यह जानकर ध्यानारूढ बने। ऐसे ध्यानारूढ बने कि क्षपक श्रेणी में पहुँचे और उन्होंने केवलज्ञान पाया। उस समय शासनदेवी ने आकर उन्हें मुनिवेष अर्पण किया और उस वेष को धरकर केवलज्ञानी नागकेतु मुनिश्वर विहरने लगे। कालानुसार आयुष्य पूर्ण होते ही वे मोक्ष पधारे।

C. श्री संप्रति महाराजा

सम्राट अशोक के समय की बात है।

एक दोपहर के समय साधू सब गोचरी के लिये निकले थे। गोचरी लेकर वे पास लौट रहे थे, तो उनको एक भिखारी मिला। उसने कहा,'आपके पास भिक्षा है तो थोड़ा भोजन मुझे दो। मैं भूखा हूँ। भूख से मर रहा हूँ।' उस समय साधू ने वात्सल्यभाव से कहा,'भाई ! इस भिक्षा में से हम तुझे कुछ भी नहीं

इस प्रकार साधू धर्म की अनुमोदना करते–करते और नवकार मंत्र का श्रवण करते–करते उसकी मृत्यु हुई और महान अशोक सम्राट के पुत्र कुणाल की रानी की कोख से उसका जन्म हुआ। उसका नाम संप्रति रखा।

कुणाल अंधा होने से उसके बदले, संप्रति को जन्म लेते ही राजा घोषित किया और व्यस्क होने पर उन्हें उज्जैन की राजगद्दी मिली और सम्राट संप्रति के रूप में पहचाने जाने लगे।

एक बार वे अपने महल के झरोखे में बैठे थे और राजमार्ग पर आवागमन देख रहे थे। वहाँ उन्होंने कई साधुओं को गुजरते हुए देखा। उनके आगे साधू महाराज थे, वे उन्हें कुछ परिचित लगे। उनके सामने वे अनिमेष देखते रहे। अचानक ही उनको पूर्वजन्म की याद ताजा हो गई। उनके समक्ष पूर्व भव की स्मृति लहराने लगी और वे पुकार उठे,'गुरुदेव ! तुरंत ही वे सीढ़ी उतरकर राजमार्ग पर आये और गुरु महाराज के चरणों में सिर झुका दिया, और उनको महल में पधारने का आमंत्रण दिया।

उनको महल में ले जा कर आसन पर बिठाकर सम्राट संप्रति ने पूछा, 'गुरुदेव ! क्या आपने मुझे पहचाना। 'हाँ वत्स ! तुझे पहचाना। तू मेरा शिष्य। तू पूर्वजन्म में मेरा शिष्य था।' गुरुजी ने कहा।

संप्रति ने कहा,'गुरुदेव ! आपकी कृपा से ही मैं राजा बना हूँ। यह राज्य मुझे आपकी कृपा से ही मिला है। मैं तो एक भिखारी था। घर–घर भीख माँगता था और कहीं से रोटी का एक टुकड़ा भी मिलता नहीं था। तब आपने मुझे दीक्षा दी। भोजन भी कराया। खूब ही वात्सल्य से अपना बना दिया। हे प्रभो ! रात्रि के समय मेरे प्राण निकल रहे थे तब आपने मेरे समीप बैठकर नवकार महामंत्र सुनाया। मेरी समता और समाधि टिकाने का भरपूर प्रयत्न किया। प्रभु ! मेरा समाधिमरण हुआ और मैं इस राजकुटुम्ब में जन्मा। आपकी कृपा का ही यह सब फल है।'

'हे गुरुदेव ! यह राज्य मैं आपको समर्पित करता हूँ। आप इसका स्वीकार करें और मुझे ऋणमुक्त करें।'

आर्यसुहस्ति ने संप्रति को कहा,'महानुभाव ! यह तेरी उदारता है कि तू तेरा पूरा राज्य मुझे देने के लिए तत्पर हुआ है। परंतु जैन मुनि अकिंचन होते हैं। वे अपने पास किसी भी प्रकार की संपत्ति या द्रव्य रखते नहीं हैं।'

सम्राट संप्रति को इस बात का ज्ञान न था। 'जैन साधू संपत्ति रख सकते नहीं हैं।' पूर्व भव में भी उसकी दीक्षा केवल आधे दिन की थी। इस कारण उस भव में भी इस बारे में उसका ज्ञान सीमित था। संप्रति के हृदय में गुरुदेव के प्रति उत्कृष्ठ समर्पण भाव छा गया था। यह थी कृतज्ञता गुण की पराकाष्ठा।

आचार्यश्री ने सम्राट संप्रति को जैन धर्म का ज्ञाता बनाया। वे महाआराधक और महान प्रभावक बने। सम्राट संप्रति ने अपने जीवनकाल में सवा लाख जिन मंदिर बनवाये और सवा करोड़ जिनमूर्तियाँ भरवायी और अहिंसा का खूब प्रचार किया।

गुरुदेव के उपकारों को भूलना नहीं, यही इस कथा का सार है।

D. रात्रि भोजन त्याग का कथानक

हँस और केशव की कथा

हंस और केशव आचार्य महाराज के पास रात्रि भोजन के त्याग का अभिग्रह ग्रहण करते हैं।

बात बहुत ही पुरानी और विख्यात है और अत्यंत उपयोगी है। कुंडिनपुर एक नगरी थी। वहाँ यशोधन नाम एक वणिक बसे हुए थे, जिनके रंभा नामक रुपवती पत्नी थी। उसकी कुक्षि से दो पुत्र रत्न उत्पन्न हुए, जिमें से एक का नाम था हँस और दूसरे का नाम था केशव। द्वितीया के चंद्र की भांति धीरे–धीरे वे युवावस्था में आए। एक दिन दोनों ही कुमार उद्यान में क्रीडा करने के लिये गए। भाग्य का कुछ उदय था, अत: वहाँ उन्हें त्यागी साधु के दर्शन हुए। धर्मघोष सूरीश्वर के दर्शन होते ही उनका हृदय हर्ष से तरंगित हो गया। दोनों ही भाइओं ने वंदन किया और सूरिजी के पास बैठ गए। सूरिजी ने दोनों को योग्य जानकर बोध देना प्रारंभ किया। जिस प्रकार उपजाऊ भूमि में बीज बोने से शीघ्र उग जाता है उसी प्रकार आचार्य श्री के बोधक वचनों ने दोनों ही आत्माओं में अनन्य प्रकाश प्रसारित कर दिया। महाराज श्री ने मुख्यत: रात्रिभोजन के त्याग का उपदेश दिया था, रात्रिभोजन करने से इस लोक और परलोक में अनेक दोष उत्पन्न होते है, अनेक जीवों की हिंसा के साझेदार बनना पडता है, अत: सुज्ञ जनों को रात्रि भोजन का त्याग अवश्य करना चाहिए।

आचार्य श्री की हृदयबोधक वाणी दोनों के हृदय मे उतर गई और दोनों ही भाईयों ने उसी समय रात्रिभोजन के त्याग की गुरु साक्षी मे प्रतिज्ञा ले ली। गुरू महाराज को भावपूर्वक वंदन करके दोनों भाई वहाँ से अपने घर लौट आए। माता से कहा माताजी ! हमारे रात्रि भोजन का त्याग है। अत: जो भी भोजन मे तैयार हो, वह दे दो, जिससे हमारे नियम पालन मे बाधा न आए।

यह बात उनके पिता यशोधन ने सुनी और सुनते ही उनकी आँखे लाल–पीली हो गई। पिता ने सोचा कि अवश्य ही किसी धूर्त ने मेरे पुत्रों को छला है। रात्रिभोजन के त्याग की क्या आवश्यकता है? हमारे परिवार मे तो बरसो से रात्रि भोजन करने का रिवाज है। पिता ने सोचा कि ऐसे सीधी रीति से ये नहीं मानेंगे अत: इन्हें दो–तीन दिन तक बराबर भूखा रखा जाए, जिससे स्वत: ये अपने नियम को तोडेंगे–इस प्रकार विचार करके अपनी पत्नी रंभा को सूचित किया की भूल से भी इन लडकों को दिन मे भोजन करने के लिये मत देना। माता ने वैसा ही किया। पूरे छ: दिन बच्चे भूखे रहे। पर रात्रिभोजन नहीं किया। साथ ही माँ–बहन ने भी भोजन नहीं किया।

छठे दिन रात्रि में पिता ने पुत्रो को कहा, वत्स् ! मुझे जो अनुकूल हो तदनुसार ही तुम्हें आचरण करना चाहिए, तभी तुम मेरे सच्चे पुत्र कहलाने के अधिकारी बन सकते हो। मुझे पता नहीं है, कि तुमने

रात्रिभोजन का त्याग किया है, परंतु तुम दोनों नहीं खाते अत: तुम्हारी माता भी भोजन ग्रहण नहीं करती। उसे भी आज छठा उपवास है। तुम्हारी छोटी बहन ने भी खाना-पीना छोड दिया है, इन सभी पर तुम्हें दया आनी चाहिए और उनके खातिर भी तुम्हें रात्रिभोजन करना चाहिये। तुम्हारी छोटी बहन भोजन के अभाव से ग्लानि महसूस करती है। तुम्हारी माता को पूछने पर मुझे यह सब पता चला। मैं तो अँधकार में ही था। तुम समझदार और सयाने हो अत: तुम्हे समझना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि पंडित पुरुष रात्रि के प्रथम अर्ध प्रहर को प्रदोष कहते हैं, और अंतिम अर्ध प्रहर को प्रत्यूष कहते हैं। अत: इस समय में भोजन करना बाधा नहीं है। तुम्हें निशाभोजन का दोष नहीं लगेगा और माता-पिता की आज्ञा का पालन हो जाएगा, साथ ही तुम्हारे नियम का भी संरक्षण हो जाएगा, अत: वत्स ! विलम्ब न करो और शीघ्र भोजन कर लो।

यह बात सुनकर भूख से अधिक विह्वल बना हुआ हंस केशव की ओर देखने लगा, अपने बडे भाई हंस को ढीला देखकर केशव ने पिता से कहा पिताजी ! आपको जो ईष्ट, सुखदायक एवं अनुकूल हो वह मैं करने के लिये तैयार हूँ परंतु जो वस्तु पाप रूप हो वह आपके लिये सुखदायक कैसे हो सकती है? फिर आपने रात्रि के प्रथम अर्ध प्रहर को प्रदोष और अंत्य अर्ध प्रहर को प्रत्यूष कहकर रात्रि भोजन का दोष नहीं लगता, ऐसा जो कहा है, वह उपयुक्त नहीं है। तत्त्व से तो सूर्यास्त से पूर्व दो घडियों का भी वर्जन होना चाहिए, अत: बुद्धिमान मानवों को उस समय भोजन का त्याग करना चाहिए और अभी तो रात्रि ही है, अत: मैं आहार कैसे ग्रहण कर सकता हूँ ? ऐसा करने पर मेरी प्रतिज्ञा भंग होती है, अत: आप मुझे रात्रि भोजन करने का बार बार आग्रह न करने की कृपा करें। इस प्रकार केशव के वचन सुनते ही उसके पिता यशोधन भयंकर आवेश में आ गए और केशव को न कहने योग्य शब्द सुना दिया कि अरे दुर्विनीत! तू मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है। निकल जा मेरे घर से ! तेरा चेहरा भी मुझे मत बताना।

पिता के आक्रोश भरे वचन सुनते ही धैर्य धारण करके केशव तत्क्षण घर में से बाहर निकल पडा। हंस भी उसका अनुगमन करने लगा, उस समय उसके पिता ने उसे एकदम पकड लिया और मधुर शब्दों से उसे अपने वश मे कर लिया तथा पिता के कहने से हंस ने उस समय रात में भोजन कर लिया।

केशव ने घर से बाहर निकल कर सातवें दिन भयंकर अटवी में प्रवेश किया। आज उसका सातवाँ उपवास था। जब रात हुई तब उसने अनेक यात्रियों से भरपूर एक यक्ष मंदिर को देखा। वहाँ कई यात्री रसोई बना रहे थे। इन सभी यात्रियों ने केशव को देखा और कहा हे मुसाफिर ! पधारो ! पधारो ! हमारा स्थान पावन करो, भोजन का लाभ देकर हमें पुण्य के भागी बनाओ, आज हमारे लिये वास्तव में सुनहरा दिन है।

केशव ने कहा: महानुभाव ! रात्रिभोजन करना घोर पाप है, अत: मैं भोजन नहीं करुंगा। उपवास व्रत में रात्रि में पारणा हो ही नहीं सकता। वह सच्चा उपवास नहीं गिना जा सकता। उपवास व्रत के अर्थ को अभी आप लोग नहीं समझते। धर्म शास्त्र का आदेश है कि आठ प्रहर तक भोजन का त्याग करने का नाम उपवास है। धर्म और शास्त्र के विरुद्ध जो तप करते है, वे तो दुर्गति के भागी बनते है।

केशव के दृढतापूर्ण वचन सुनकर यात्रीगण बोलें अरे भाई! हमें तुम्हारी बात नहीं सुननी है। हमने तो सारी रात अतिथि की खोज की, परंतु कोई अतिथि नहीं मिले। अत: हम पर अनुग्रह करके हमें लाभान्वित करो। ऐसा कहने के साथ ही सभी केशव के चरणों में पडे, तब भी केशव अपने व्रत में अविचल रहा। इतने में सभी को भारी आश्चर्य हो एसी घटना घटित हुई कि यक्ष की मुर्ति में से यकायक एक पुरुष बाहर निकला। इसके हाथ में मुदगर था। उसके नेत्र अत्यंत विकराल थे और आक्रोशपूर्वक वह केशव को कहने लगा अरे दुष्टात्मा ! तू कैसा दयाहीन है? धर्म के मर्म को भी नहीं समझता है। मेरे धर्म को तूने दूषित किया है और मेरे भक्तों की तू अवज्ञा कर रहा है। तू भोजन करता है या नहीं ? अन्यथा अभी मैं तेरे मस्तक के टुकडे-टुकडे कर डालता हूँ।

केशव को भयभीत करता हुआ यक्ष

केशव के गुरू को यक्ष ने अपनी माया से मार डाला !

केशव के लिए यह कठिन परिक्षा का पल था। अच्छे-चंगे व्यक्ति ऐसे प्रसंग पर कायर हो जाते है और "लो, भोजन कर लेता हूँ अरे भाई साहब ! मारना मत", ऐसा कह दें, परंतु धैर्यवान आत्माएँ बिना हिम्मत हारे प्राणों की परवाह किये बिना प्रतिज्ञा का दृढता पूर्वक पालन करती है। उस समय केशव ने तनिक मुस्कुराकर यक्ष को कहा हे यक्ष ! तू मुझे क्षुभित करने के लिये यहाँ आया है, परंतु याद रख की मुझे मृत्यु का भय नहीं है। मृत्यु का भय तो अधर्म और पापी आत्माओं को होता है। मैं तो धर्म के लिये प्राण भी न्योछावर करने को तत्पर हूँ। अत: मेरी मृत्यु भी महोत्सव रुप होगी और परलोक में भी सद्गति का भागी बनूँगा।

केशव के वचन सुनते ही यक्ष चिढ गया और अपने सेवकों-भक्तों को उसने कहा कि जाओ यह ऐसे नहीं मानेगा, अत: इसके गुरु को पकड कर यहाँ ले आओ। इसकी आँखों के समक्ष ही इसके गुरु के टुकडे-टुकडे कर डालूँगा, क्योंकि केशव को इस मार्ग पर उसी ने चढाया है। अत: उसे ही दंड दे दूँ। यक्ष की आज्ञा होते ही सेवक दौड पडे और धर्मघोष नामक आचार्य को केशपाश में पकडकर यक्ष के समक्ष उपस्थित किया। उस समय यक्ष ने अपमानजनक शब्दों में आचार्यश्री से कहा - अरे मुनि ! तेरे इस शिष्य केशव को समझा और अभी भोजन करवा, वरना तत्काल तेरे भी टुकडे-टुकडे कर डालूँगा। तब धर्मघोष गुरु ने केशव को कहा - केशव ! देव-गुरु और संघ के खातिर अकृत्य भी करना पडता है, अत: तुझे तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है, फिलहाल तू भोजन कर लें, वरना यह यक्ष मुझे कुचल डालेगा। मेरे प्राण हर लेगा, अत: मेरी रक्षा के खातिर भी तू भोजन ग्रहण कर लें।

केशव तत्त्वज्ञ था, इस प्रकार यक्ष की माया में फँस जाए ऐसा वह न था। उसे दृढ विश्वास था कि मेरे गुरु धर्मघोष महाराज कभी भी ऐसे वचन कह ही नहीं सकते, यह सब इस यक्ष की माया लगती है। मेरे

गुरु तो यथार्थवादी और महाधैर्यवाले है! वे इस प्रकार मृत्यु से कदापि डरने वाले नहीं है। अत: मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये मेरे गुरू नहीं है, बल्कि यह तो सारी यक्ष की मायाजाल है।

केशव जब मन में इस प्रकार सोच रहा था तब यक्ष ने मुनि को मारने के लिए मुदगर उठाया और वह बोल उठा–अरे केशव ! बोल भोजन करता है या नहीं ? वरना तेरे गुरु के टुकडे–टुकडे करता हूँ ? केशव ने तुरंत उत्तर दिया अरे यक्ष ! ये मेरे गुरू नहीं है। वे तुझ जैसे के छ्ल में कभी नहीं फँस सकते, स्वयं ढीले पडे या किसी से ठगे जा सकें ऐसे नहीं है। केशव की ये बातें सुनकर कृत्रिम मायावी गुरू ने कहा केशव ! मैं तेरा गुरु धर्मघोष ही हूँ। मुझे बचा. अन्यथा यह यक्ष मुझे चकनाचुर कर डालेगा और तुरंत ही यक्ष ने तो मुदगर से मुनि की खोपडी को चकनाचूर कर डाला और मुनि के प्राण पंखेरु उड गए। फिर भी केशव तो स्व प्रतिज्ञा में अविचल दृढ रहा। यक्ष ने कहा अरे ! अब तो समझ और मेरी बात मानकर तू भोजन कर लें। यदि मेरे कहे अनुसार तू करता है तो मैं तेरे मृत गुरु को जीवित कर देता हूँ, और तुझे आधा राज दे दूँगा, परंतु यदि तूँ नहीं मानेगा तो इस मुदगर से तेरे भी प्राण नाश कर दूँगा।

कायर और नामर्द व्यक्ति ऐसे विकट प्रसंग पर साहस खो बैठते है, परंतु धैर्यवान केशव ने तो यक्ष को कहा, अरे यक्ष ! हमारे गुरु ऐसे हो ही नहीं सकते, इस बात का मुझे पूर्ण विश्वास है। तू तेरे स्थान पर चला जा। किसी भी कीमत पर मैं अपना नियम भंग नहीं करुँगा। मृतकों को जीवित करने की तुझ में शक्ति हो तो तेरे मृत सेवको, भक्तों तथा तेरे पूर्वजों को जीवित कर। मिथ्या बकवास बन्द कर। तुझ में राज्य–वैभव देने का सामर्थ्य हो तो तेरे इन सेवको को क्यों नहीं दे देता ? रह रहकर तू मुझे मृत्यु का भय बताता है, परंतु मैं मौत से डरने वाला नहीं हूँ, जिसका आयुष्य प्रबल है, उसे मृत्यु के मुख में डालने की किसी में भी शक्ति नहीं। **धर्मोरक्षति रक्षित:** – धर्म ही मेरा रक्षणकर्ता है।

केशव को ऐसे अडिग, निडर और प्रतिज्ञा पालन मे दृढ देखकर यक्ष केशव पर अति प्रसन्न हुआ और उसने केशव को आलिंगन किया तथा उसकी दृढ़ता की भूरि–भूरि प्रशंसा की। यक्ष ने कहा, केशव! तेरी बात सत्य है, ये तेरे गुरू नहीं है। मृतकों को सजीवन करने की मुझ में शक्ति नहीं है। मैं किसी को राज्यादि भी नहीं दे सकता। इस प्रकार जब यक्ष बोला , तब मुनि के वेश में पडा हुआ मुर्दा यकायक खडा होकर आकाश के मार्ग में पलायन कर गया।

केशव के 7–7 दिन के उपवास होने पर भी, यक्ष द्वारा घोर उपसर्ग होते हुए भी, वह तनिक भी नहीं डिगा, तब यक्ष ने कहा तू अब आराम कर और प्रात: काल में इन सभी के साथ पारणा करना। साथ ही उस यक्ष ने तुरंत ही उस स्थान पर स्व माया से एक शय्या तैयार करके उसे बताई, जिसमें केशव निश्चिन्त होकर सो गया और भक्त जन उसके पाँव दबाने लगे। वह अत्यंत थका हुआ होने से तुरंत निद्राधीन हो गया।

थोडी ही देर में यक्ष ने अपने माया से प्रभात का समय विकुर्वित किया जिससे ऐसा ही लगे कि सवेरा हो चुका है। यक्ष बोला, अरे केशव ! उठ उठ ! सुबह हो चुकी है। केशव ने देखा तो आकाश में सूर्य दिखाई दे रहा था। चारों ओर प्रकाश व्याप्त हो चुका था। केशव पल भर तो विचारमग्न हो गया। उसने

विचार किया कि अभी ही तो मैं सोया था तो घडी भर में ही क्या रात्रि पूर्ण हो गई ? ऐसा असंभव है। अवश्य ही यह सब यक्ष की माया है। अभी तो मेरी आँखों में नींद है और मेरे श्वास में सुगंध का अभाव है। केशव इस प्रकार सोच ही रहा था कि वह यक्ष बोल उठा, अरे केशव! अब कदाग्रह छोड दे और शीघ्र पारणा करले । केशव ने कहा यक्षराज ! इस प्रकार मैं छला जा सकूँ ऐसा नहीं हूँ। मुझे विश्वास है कि अभी तो रात्रि है, यह प्रकाश तो तेरी माया जाल का परिणाम है।

जब इतनी विकट कसौटी करने भी केशव डिगा नही, तब यक्ष प्रसन्न हुआ और केशव के मस्तक पर पुष्प की वृष्टि की तथा आकाश जय जय शब्द से गूँजारित हो गया। अब न रहा यक्ष न रहा यक्ष मंदिर और न रहे उस यक्ष के भक्तजन ! केशव समझ गया कि अवश्य ही उसने मेरी परीक्षा की है। उसी समय यक्ष प्रत्यक्ष हुआ और केशव के गुणगान करने लगा कि वास्तव में इस जगत में आप महान् पुण्यवान एंव धैर्यवानों में शिरोमणि पुरुष हो। सचमुच ही आप जैसे पुण्यात्माओं से यह पृथ्वी रत्नगर्भा कहलाती है।

इन्द्र महाराजा ने अपनी सभा में रात्रि भोजन का त्याग तथा आपकी अटल प्रतिज्ञा की प्रशंसा की थी। आपके धैर्य का अपूर्व वर्णन किया था। मुझे यह बात स्वीकार्य न थी। इन्द्र की बात को असत्य करने और आपको प्रतिज्ञा च्युत करने के लिये मैं यहाँ आया था, परंतु आप तनिक भी डिगे नहीं और प्रतिज्ञा में अविचल रहे। धन्य है आपको ! मेरा अपराध क्षमा करो। मैं आप पर प्रसन्न हुआ हूँ। माँगो ! जो माँगना है, वह मैं देने के लिये तैयार हूँ। यद्यपि महान् व्यक्तियों को कुछ भी इच्छा नहीं होती, परंतु आपके धैर्य और शौर्य से आकृष्ट मैं आपको मेरी भक्तिवश वरदान देता हूँ कि आज से किसी भी रोगी को आपके चरण धोया हुआ जल लगाओगे तो उसका रोग मिट जाएगा और आप मन में जो भी इच्छा करोगे, वह तत्काल पूर्ण होगी। इस प्रकार यक्ष ने केशव को वरदान दिया और उसी समय यक्ष केशव को साकेतपुर नगर के बाहर रखकर अदृश्य हो गया। केशव ने भी स्वयं को किसी नगरी के बाहर पाया। सूर्योदय होने पर नित्य कर्म से निवृत्त होकर उसने नगर में प्रवेश किया। वहाँ नगर के मध्य भाग में उसने एक आचार्य महाराज को नगर जनों को प्रतिबोध करते हुए देखा। केशव को गुरु दर्शन से अत्यंत आनंद हुआ। गुरु महाराज को वंदन करके उनके सन्मुख वह बैठ गया।

देशना समाप्त होने के बाद नगर के धनंजय राजा ने गुरुदेव को प्रार्थना की, हे गुरुदेव ! मेरी इच्छा व्रत ग्रहण करने की है। अनेक रोगों से मेरा शरीर क्षीण होने आया है। अत: अब आत्म कल्याण की मेरी भावना है , परंतु मुझे कोई पुत्र नहीं है। अपुत्र ऐसा मैं अपना राज्य सिंहासन किसे दूँ ? ऐसा विचार करके रात्री में मैं सोया था। रात्रि में स्वप्न मे एक दिव्य पुरुष ने आकर मुझे कहा कि कल प्रात: दूर देशांतर से एक व्यक्ति तेरे गुरु महाराज के पास आएगा, वह पुरुष महान् भाग्यशाली है। उसे तू राजगद्दी दे देना

जिससे तेरे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। ऐसा स्वप्न आने के पश्चात् मैं तुरंत ही जाग उठा। प्रात: कालीन सर्व नित्य कर्मों से मैं निवृत्त होकर आपके पास आया कि ये महान् पुरुष दिखाई दिये। उस समय गुरु महाराज ने केशव के रात्रि भोजन के त्याग का सारा वृतांत कहा, तब राजा ने कहा, गुरुदेव ! स्वप्न में आने वाला वह दिव्य पुरुष कौन होगा ?

राजा के प्रश्न के उत्तर में अतिशय ज्ञानी गुरु महाराज ने कहा, राजन ! इस केशव की परीक्षा करने वाला वह्नि नामक यक्ष है। इसी यक्ष ने तुझे स्वप्न दिया है। तत्पश्चात् महाराजा केशव के साथ राजमहल में पधारें और भारी धूमधाम के साथ केशव का राज्याभिषेक किया। इसी तरह केशव–केशव मिटकर एक महान राजा केशव बन गया। धर्म की महिमा असीम है, धर्मश्रवण के प्रभाव से सुख समृद्धि और दिव्य सुख स्वत: प्राप्त हो जाते है, परंतु अपने तो माला फेरना प्रारंभ करने के साथ ही आकाश में ऊँचा देखते है कि स्वर्ण मुद्राएँ कब बरसें ? अपने को दृढता तो रखनी नहीं है, कसौटी में से निकलना नहीं है, नियमों का पालन दृढ रूप से करना नहीं है और तत्काल धन, सुख और समृद्धि की कामना और आकांक्षा रखते है! यह तो आकाशकुसुमवत् व्यर्थ है।

केशव के राज्याभिषेक के पश्चात् वहाँ के राजा ने गुरू महाराज के पास प्रवज्या अंगीकार की। धर्मी राजा केशव के मंगल आगमन से प्रजा में अनन्य आनंद छा गया। राजा केशव प्रतिदिन प्रभु की पूजा–अर्चना करने लगे। दीन–दु:खी को देखकर उनके हृदय में दया–करुणा की उर्मियाँ उछलती थी। उनके द्वार दीन जनों के लिये खुले थे। ऐसे पुण्यशाली राजा के पुण्य से आकर्षित होकर सीमावर्ती राजा भी उनकी आज्ञा मानने लगे। राजा केशव न्यायनीति से राज्य का पालन करते थे, प्रजा आनंद विभोर बन चुकी थी।

एक दिन राजा केशव राजमहल के झरोखे में बैठे–बैठे नगर की शोभा देख रहे थे, राजा केशव को अपने पिता की स्मृति होने से पिता के दर्शन करने की उत्कंठा हुई। सज्जन कभी भी अपनी सज्जनता का त्याग नहीं करते। पिता ने घर से बाहर निकाल दिया था, फिर भी वह बात याद न करके पिता के दर्शन की अभिलाषा उनकी उत्तमता की परिचायिका है। वर्तमान काल की ओर हम जरा दृष्टिपात करें तो आधुनिक पुत्र तो अवश्य ही पिता का निंकदन निकालने के लिये तैयार हो जाए।

राजा केशव के हृदय में पिता के दर्शन की अभिलाषा होने पर साक्षात् उनके पिता राजमार्ग से निकलते हुए दिखाई पडे। जिनका मुख म्लान था, वस्त्रों का ठिकाना न था, परंतु केशव ने तुरंत अपने पिता को पहचान लिया। वे तुरंतु ही राजमहल में से उतर कर पिता के चरणों में झुक पडे। राजा के पीछे अनेक सेवक दौडकर आए। पिता की दयनीय स्थिति देखकर केशव का हृदय भर गया। राजा केशव ने कहा–पिताजी आप तो समृद्धिशाली थे, आज आपका रंग–ढंग रंक जैसा क्यों लगता है ? केशव के पिता यशोधन को अपना पुत्र राजा बना है इस बात का पता चला, तब उनके नयन हर्ष और शोक से सजल हो गए। बोले–पुत्र केशव ! तेरे घर से निकल जाने के बाद हंस को मैने रात्रि भोजन करने के लिए बिठाया था। थोडा सा भोजन करने के पश्चात वह तुरंत ही जमीन पर लुढक पडा और बेहोश हो गया था।

रात्रि में भोजन करते समय हंस कुमार के आहार में ऊपर से सर्प का विष गिरा।

उसकी माता ने स्थिति जानने के लिये दीपक प्रकट किया और भोजन के थाल में देखा तो पाया कि भोजन विष मिश्रित है। तेरी माता ने ऊपर नजर डाली तो वहां पर एक साप को बैठा हुआ देखा, तेरी माता समझ गई कि जरुर इस सर्प के मुहँ में से जहर भोजन मे पडा होगा। जिससे भोजन विष मिश्रित हो गया है।

हंस की यह स्थिति देखकर हम सभी करुण क्रन्दन करने लगे। इतने में एक विषवैद्य आ पहुँचे। विष वैद्य को हमने पूछा, हे वैद्यराज ! यह विष किसी भी प्रयोग द्वारा दूर होगा क्या ? तब उन्होंने समझाया कि किसी अमुक वार, अमुक तिथि और अमुक नक्षत्र में यदि विष चढा हो तो ही वह उतरता है, नहीं तो नहीं उतरता। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि हंस को सर्प ने कांटा नहीं था, परंतु सर्प का विष उसके उदर में गया है, अत: यह बात खूब ही विचारणीय है।

मैंने वैद्यराज को पूछा कि अब हंस किसी भी उपाय से बच सके ऐसी स्थिति है या नहीं ? तब वैद्य ने मंत्र का आह्वान करके कहा कि तुम्हारा उपाय सफल नहीं होगा। सर्प का विष धीरे-धीरे इसके शरीर में व्याप्त होगा और इसके प्राण लेकर ही रहेगा। एक माह की अवधि मे इस बालक की हड्डियाँ गल जाएगी और अंत में यह मृत्यु धाम सिधारेगा। वैद्य के वचन सुनते ही हमारे तो होश उड गए। मैं हंस को एक शय्या में सुलाकर पाँच दिन तक देखता रहा कि क्या घटना होती है। पाँच दिन के पश्चात् देखा तो हंस के शरीर में छिद्र-छिद्र हो गए थे। वास्तव में तेरे चले जाने के पश्चात् हम विषम स्थिति में फँस गए। तेरी तलाश में घर से बाहर निकलकर नदी-नाले लाँघकर अटवी को पार करता हुआ मैं इस नगर मे आ पहुँचा। पुण्ययोग से तेरा यहाँ मिलन हुआ। घर छोडे मुझे एक माह व्यतीत हो चुका है। वैद्य के कथन के अनुसार आज हंस अवश्य ही मौत के मुँह में समा गया होगा।

पिता के मुख से हंस की बाते सुनने पर राजा केशव को अत्यंत दु:ख हुआ। केशव ने विचार किया, यहाँ से मेरा नगर लगभग सौ योजन दूर होगा। क्या मैं अपने भाई का मुख नहीं देख सकूँगा ? जैसे ही यह विचार मन में अंकुरित हुआ कि तुरंत ही केशव और उसके पिता कुंडनपुर नगर में अपने ही घर में हंस के पास खडे दिखाई पडे, क्योंकि केशव को देव का वरदान प्राप्त था कि मन में जो विचार करोगे वह मैं बैठा-बैठा तुम्हारे सारे ही मनोरथ पूर्ण करुंगा। केशव ने हंस का शरीर जीर्ण शीर्ण अवस्था में पाया। सारा ही शरीर सड चुका था। उसकी दुर्गंध चारों ओर फैल रही थी जिससे उसके पास खडे रहने के लिये भी कोई तैयार न था। केवल उसकी माता उसके पास बैठी थी जिसकी आँखों में से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी और वह विलाप कर रही थी। हंस के निकट ही मानो मृत्यु आकर उपस्थित हुई हो ऐसा लगता था।

सभी ने आशा छोड दी थी। नरक जैसी घोर वेदना इस मृत्युलोक में हंस भुगत रहा था।

केशव ने विचार किया कि मैं इधर कहाँ से आया ? जैसे ही यह विचार किया कि वहाँ वह्नि देव दिखाई पडा। वह्नि देव ने कहा मित्र ! मैं ही तुझे वहाँ से उठाकर यहाँ लाया हूँ। इस प्रकार कहकर वह्नि देव

अदृश्य हो गया।

तत्पश्चात् केशव ने जल लेकर हंस के शरीर पर छिडकाव किया। जल हंस के शरीर पर गिरते ही जादूई असर दिखाई दिया और कुछ ही क्षणों में वह हंस रोगमुक्त हो गया। इतना ही नहीं, बल्कि स्वस्थ होकर वह खडा हुआ। उसकी काया पहले जैसी विष रहित बन गई।

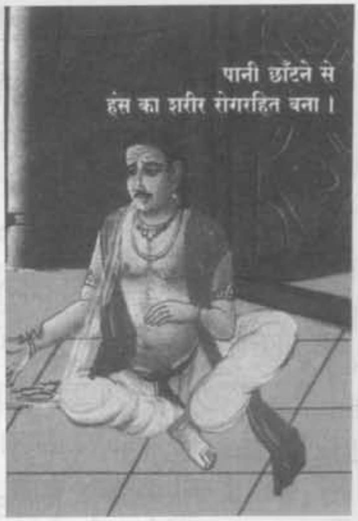
पानी छाँटने से हंस का शरीर रोगरहित बना।

यह बात समस्त नगर में विद्युत वेग से फैल गई और रोग से पीडित अनेक लोग वहाँ पर आ पहुँचे। इन सभी लोगों पर परोपकारी केशव ने अपने हाथ से स्पर्शित जल का छिडकाव किया और सभी को रोगमुक्त किया।

माता-पिता के आनंद की सीमा न रही। नगर की जनता भी अत्यंत हर्षित हुई। सर्वत्र केशव की जय जयकार हुई और धर्म की महिमा का प्रसार हुआ। अनेक लोगों ने रात्रि भोजन के त्याग की प्रतिज्ञा अंगीकार की। धर्म के प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर जनता धर्म के मार्ग पर मुडी।

श्रावक योग्य व्रतों का अंगीकार करके राजा केशव अन्त में स्वर्ग लोक में सिधारा।

राजा केशव अपने सगे-स्नेहीजनों और माता-पिता को अपनी राजधानी साकेतपुर नगर में ले अया। ऐसे धर्मी राजा के राज्य में प्रजा आनंद प्रमोद करने लगी। राज्य में समृद्धि और प्रीत तो स्वत: ही चरणों में लौटती है-ऐसा सभी को लगा।

राजा केशव ने अगणित आत्माओं को धर्म मार्ग पर चढाकर कल्याणकारी राज्य कैसा होता है, इसका सभी को परिचय दिया। चिरकाल तक राज्य ऋद्धि भोगकर श्रावक के व्रत गहण करके केशव यशस्वी, उज्ञवल और धर्ममय जीवन जीकर स्वर्गलोक में सिधारा।

रात्रिभोजन के त्याग की यह प्रभावशाली कथा हमें रात्रिभोजन के त्याग की प्रेरणा देती है, त्याग का माहात्म्य प्रदर्शित करती है साथ ही रात्रिभोजन से इस लोक में भी कैसे भयंकर दु:ख दर्द और कैसी घोर वेदनाओं का अनुभव करना पडता है, आदि वस्तु स्थिति प्रस्तुत करके हमें सुंदर सद्बोध दे जाती है।

इतनी सूक्ष्मता तो जैन शासन के सिवाय कहाँ जानने को मिल सकती है ? जिन लोगों को यह शासन मिला है, वे सचमुच महान् भाग्यशाली है, परंतु ऐसा उत्तमशासन प्राप्त होने के पश्चात् भी यदि ऐसे बडे पाप करते ही रहे तो ऐसे लोगों को कैसा कहा जाए ?

अभी अपना यह मानव का अवतार है पशु का नहीं। पशु के अवतार में अपने रात दिन खाते रहते थे। इस भव में भी यही कुसंस्कार ? पशु का अवतार गया, लेकिन पशुता नहीं गई।

अत: रात्रिभोजन के महापाप को समझकर आज से ही त्याग करने का संकल्प करना और द्रव्य भाव दोनों ही प्रकार के स्वास्थ्य से लाभान्वित बनना।

F. निर्दोष सीताजी पर कलंक क्यों आया ?

महान् पवित्र आत्मा सती सीताजी पर जन-सामान्य ने कलंक (झूठा) लगाया। जिससे सीताजी को अनेक कष्ट भुगतने पड़े। क्योंकि जैनदर्शन **CAUSE & EFFECT** थियरी को मानता हैं। कारण के बिना कार्य उत्पन्न होता ही नहीं। इसका संबंध पूर्व भव से है, क्योंकि उनकी आत्मा पूर्व भव में आलोचना (प्रायश्चित्त) न ले सकी। इसलिये महासती के ऊपर भी काला कलंक लगा।

श्रीभूति पुरोहित की पत्नी सरस्वती ने पुत्री को जन्म दिया। उसका नाम वेगवती रखा गया। क्रमशः वह यौवनावस्था को प्राप्त हुई, फिर भी उसकी धर्मकार्यों में अच्छी लगनी थी। एक दिन उसने कायोत्सर्ग में खडे सुदर्शन मुनिश्री को देखा, मुनि भगवंत त्यागी और तपस्वी थे। जिन्हें अनेक लोग वंदन करते थे। वेगवती ने हँसी में आरोप लगाते हुए लोगों से कहा कि इनको आप क्यों वंदन करते हो? इनमें क्या पड़ा है? मैंने तो स्त्री के साथ क्रीड़ा करते हुए इन्हें देखा है और इन्होंने उस स्त्री को दूसरी जगह भेज दिया है। यह सुनकर शीघ्र ही लोकमानस बदल गया।

ऐसी बात ''विश्वस्त सूत्र'' जैसी अपने गाँव की लड़की वेगवती के मुंह से..... सबको विश्वास हो गया। महान पवित्र आत्मा होते हुए भी कुमारिका वेगवती ने सिर्फ उपहास में आरोप लगाया था, परंतु लोग कलंक की घोषणा सुनते ही मुनिश्री के प्रति दुर्भाव वाले बन गये।

यह देखकर सुदर्शन मुनिश्री ने वेगवती के ऊपर द्वेष नहीं किया, परंतु अपने कर्मों का विचार कर अभिग्रह किया कि जब तक यह कलंक नहीं उतरेगा, तब तक मैं कायोत्सर्ग नहीं पारुंगा। कायोत्सर्ग के प्रभाव से देव ने वेगवती के मुख को श्याम व विकृत बना दिया, कोयले जैसा काला और टेढ़ा-मेढ़ा.... उसके पिताश्री यह देखकर आश्चर्यचकित हो गये... मेरी सुंदर लड़की को यह कौन-सा रोग हो गया....''पुत्री! यह क्या किया? कोई दवाई तो नहीं लगाई। कुछ उल्टा-सुल्टा तो नहीं किया।'' श्रीभूति ने आश्चर्य से पुछा।

वेगवती ने नम्रता से जवाब दिया, पिताश्री! और तो मैने कुछ नहीं किया, परंतु कौतुक वृत्ति से मजाक में लोगों को कहा कि ''सुदर्शन मुनि को मैंने स्त्री के साथ देखा है।'' यह सुनते ही श्रीभूति क्रोधायमान हुए कि, ''अररर...यह तूने क्या किया? जा, अभी जा और उस महान मुनि से माफी माँगकर आ...। पिताजी के रोष से वेगवति भयभीत हो गई और प्रकट रूप से वह थर-थर काँपने लगी। उसने सभी लोगों के सामने मुनि से क्षमा-याचना की और कहा कि मैंने उपहास में असत् दोषारोपण करके आपके ऊपर कलंक लगाया हैं, आप निर्दोष हैं। यह सुनकर लोग वापस मुनिश्री का सत्कार करने लगे। प्रकट रूप से माफी मांगने के पश्चात् उसने आलोचना न ली।

बाद में उसने दीक्षा ली। चारित्र जीवन की सुंदर आराधना कर मृत्यु पाकर पांचवे देवलोक में गई। वहाँ से मरकर जनक राजा की पुत्री सीता बनी। रामचन्द्रजी की पत्नी बनने के बाद वनवास के दरम्यान जंगल में रावण ने उसका अपहरण किया। भयंकर युद्ध हुआ। रावण की करूण मौत हुई। राम की विजय हुई। फिर राम, लक्ष्मण और सीता को अयोध्या में लोगों ने बड़ी खुशी से प्रवेश करवाया।

महान् सती सीताजी पर लोग झूठा दोषारोपण करने लगे कि सीताजी इतने दिन रावण के घर अकेली रहीं, अतः वह कैसे सती रह सकती है? रामचन्द्र जी ने कोई परीक्षा किये बिना ही सीताजी को

कैसे वापस घर में रख लिया? इन्होंने सूर्यवंश पर काला धब्बा लगाया है। इस प्रकार एक निर्दोष आत्मा सीताजी पर झूठा कलंक आया, क्योंकि वेगवती के भव में उन्होंने आलोचना नहीं ली थी।

रामचन्द्रजी स्वयं जानते थे कि सीताजी महान सती है, उसमें तनिक भी दोष नहीं है। फिर भी उन्होंने लोकापवाद के कारण कृतान्तवदन सारथी को बुलाया और तीर्थयात्रा के निमित्त से गर्भवती सीताजी को जंगल में छोड़ने के लिए कहा।

कृतान्तवदन जब सिंहनिनाद नामक भयानक जंगल में पहुँचा और वहाँ वह रथ से नीचे उतरा। तब उसका मुख म्लान हो गया। आँखों से श्रावण भाद्रपद बरसने लगा, तब सीताजी ने उससे पूछा कि ''आप शोकाकुल क्यों है''? तब उसने कहा कि ''इस पापी पेट के कारण मुझे यह दुर्वचन कहना पड़ रहा है कि आप रथ से उतर जाईये, क्योंकि यह रामचन्द्रजी की आज्ञा है कि आपको इस जंगल में निराधार छोड़कर मुझे वापस लौटना है।'' रावण के यहाँ रहने के कारण लोगों में आपकी निंदा होने लगी है। इसलिए सती होते हुए भी आपको रामचन्द्रजी ने लोक-निंदा से बचने हेतु जंगल में छोड़ने के लिए मुझे भेजा है।

सीताजी यह सुनते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ी; आँखें बंद हो गई, शरीर भी निश्चेष्ट-सा हो गया, सारथी जोर से रोने लगा। अरे! मेरे वचन से एक सती की हत्या? कृतान्तवदन असहाय होकर खड़ा रहा। इतने में जंगल की शीत हवा ने संजीवनी का काम किया। उससे निश्चेष्ट सीताजी को होश आया, फिर उसने सारथी द्वारा रामचन्द्रजी को संदेश भेजा कि जिस तरह लोगों के कहने से आपने मेरा त्याग किया है, उससे आपका कुछ भी नुकसान नहीं होगा क्योंकि मैं मंदभाग्यवाली हूँ। परंतु उसी प्रकार लोगों के कहने से धर्म का त्याग मत करना। नहीं तो भवोभव बिगड़ जायेंगे।

यह सुनकर सारथी की आँखों में आँसू आ गये। उसका हृदय गद्‌गद् हो गया... महासती के सत्य पर धन्य-धन्य पुकार उठा। सती को छोड़कर सारथी चला गया। उस भीषण जंगल में वज्रजंघ राजा अपने मंत्री सुबुद्धि आदि के साथ हाथियों की शोध के लिये आये हुए थे। दूर से अकेली, अबला स्त्री को देखकर सहायता के लिये राजा अपने सिपाहियों के साथ वहाँ पहुँचे। सीताजी उन्हें लूटेरा समझकर गहने उनकी तरफ फेंकने लगी। तब वज्रजंघ राजा ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि, ''आप चिंता मत कीजिये। हम आपकी सहायता के लिये आये हैं। आपके भाई के समान हैं।'' तब सीताजी ने सब हकीकत कही, उसके बाद वज्रजंघ राजा वहाँ से सीताजी को सम्मान पूर्वक सुरक्षा के लिए पुंडरीक नगरी में ले गया। वहाँ पर उसने लव-कुश दो पुत्रों को जन्म दिया। जब वे बड़े हुए, तब उन्होंने राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध किया। युद्ध में राम-लक्ष्मण आकुल-व्याकुल हो गये। इतने में नारदजी वहाँ आये। उन्होंने पिता-पुत्र का परिचय करवाया और युद्ध को रोक दिया गया। उनका सुखदायी मिलन हुआ। लव और कुश को मान-सम्मान के साथ अयोध्या में प्रवेश करवाया। बाद में रामचंद्रजी की आज्ञा को मान देकर सीताजी ने अग्नि-दिव्य किया।

रामचन्द्रजी ने सम्मानपूर्वक अयोध्या में प्रवेश करने के लिए सीताजी से कहा। सीताजी ने उसी पल आत्म-कल्याण करने हेतु स्वयं लोच कर संयम स्वीकार किया; इत्यादि बातें हम जानते हैं।

पूर्वभव में उपहास में मुनि पर कलंक का आरोपण दिया था, उसका प्रायश्चित न लेने से एक महासती के ऊपर कलंक आया और उसके कारण कितने कष्ट सहने पड़े। अतः हमें जरूर आलोचना लेनी चाहिए।

17. प्रश्नोत्तरी

1. 24 तीर्थंकरो की च्यवन तथा दीक्षा की तिथि व स्थल लिखिए?
2. 24 तीर्थंकरो का शरीर प्रमाण लिखिए?
3. 24 तीर्थंकरो के यक्ष और यक्षिणि के नाम बताओ?
4. 24 तीर्थंकरो के प्रमुख एवं प्रथम गणधर तथा प्रमुख साध्वी के नाम बताओ?
5. 24 तीर्थंकरो के जन्म नक्षत्र तथा उस वृक्ष का नाम जिसके नीचे केवलज्ञान हुआ था?
6. प्रभु की द्रव्यपूजा करने से कच्चे पानी, फूल, धूप, दीप, चंदन घिसना वगैरह से जीव विराधना होती है, उसमें पाप नहीं लगता?
7. द्रव्य पूजा से आत्मा को लाभ होता है, यह कैसे समझा जा सकता है ?
8. साधू भगवंत पूजा क्यों नहीं करते ?
9. भगवान तो कृतार्थ है उनको किसी चीज की जरुरत नहीं होती तो उत्तम द्रव्य क्यों चढाना?
10. प्रभु तो वीतरागी है तो उनसे किया गया प्रेम किस काम का ?
11. प्रभु के दर्शन क्यों और किस भाव से करने चाहिए ?
12. प्रभु भक्ति विधिवत् करने के लिए क्या करना चाहिए ?
13. दस त्रिक का मतलब समझाओ?
14. दशत्रिक के नाम बताओ?
15. पाँच अभिगम (विनय) समझाओ?
16. पूजा के लिए कितने प्रकार की शुद्धि रखनी आवश्यक है?
17. प्रभु की पूजा कब और कैसे करनी चाहिए ? उसका फल क्या है?
18. ज्ञानी की आशातना कैसे होती है?
19. ज्ञान के साधनों की आशातना कैसे होती है?
20. ज्ञान की आशातना कैसे होती है?
21. ज्ञान की आशातना से हानि और आराधना से लाभ बताइए?
22. सिद्ध भगवंत किसे कहते है?
23. सिद्ध भगवंत के आठ गुण कौन–कौन से है?
24. अरिहंत और सिद्ध भगवान में क्या भेद है?
25. अरिहंत भगवंत बाद में सिद्ध बनते है तो सिद्ध भगवंत बाद में क्या बनते है?
26. अरिहंत और सिद्ध भगवान को समझने हेतु कोई दृष्टांत दिजीए?
27. सिद्ध भगवंत कौन बन सकते है ?
28. सिद्ध भगवंतों को मोक्ष में सुख मिलता है या नहीं ?
29. हमारे जिनालयों में अरिहंत होते है या सिद्ध भगवंत
30. अरिहंत और सिद्ध के अलावा यदि कोई परमात्मा नही है तो आचार्य भगवंतों को नमस्कार क्यो करते है ?
31. आचार्य भगवंतों का विशिष्ट गुण कौनसा है?
32. उपाध्याय भगवंतों को नमस्कार क्यों करना चाहिए?

33. उपाध्याय भगवंत के गुण कितने और कौन–कौन से हैं?
34. उपाध्याय भगवंतों का विशिष्ट गुण कौनसा है?
35. साधु भगवंतों को नमस्कार क्यों करना चाहिए ?
36. साधु भगवंतों का वर्ण कौनसा है और क्यों ?
37. साधु भगवंतों के कितने गुण प्रचलित है?
38. पाँच महाव्रत कौन–कौन से है ?
39. नवकार के पांचवे पद में लोए शब्द की क्या जरुरत है ?
40. सव्व पद का क्या अर्थ होता है ?
41. सिद्ध के पहले अरिहंत को नमस्कार क्यों किया जाता है?
42. पंच परमेष्ठि के कुल कितने गुण होते है?
43. तपस्या संबंधी नाद–घोष लिखिए?
44. गोचरी का लाभ लेने हेतु किन–किन दोषों को टालना चाहिए ?
45. गोचरी में उपयोग रखनें संबंधि बातें क्या–क्या है?
46. साधु भगवंत धर्मलाभ बोलते है इसका अर्थ क्या है?
47. रात्रि शयन की विधि क्या है?
48. श्रावक के दैनिक कर्त्तव्य कितने और कौन–कौन से है संक्षिप्त में समझाए?
49. रात्रि भोजन का त्याग क्यों करना चाहिए ?
50. जैनेत्तर दर्शन में रात्रि भोजन पर टिप्पणी किजीए ?
51. डॉक्टर–वैद्यों की दृष्टि से रात्रि भोजन पर टिप्पणी किजीए ?
52. सर्व सामान्य की दृष्टि से रात्रिभोजन पर टिप्पणी किजीए ?
53. माता–पिता हमारे उपकारी है? कैसे?
54. पर्याप्ति कितनी और कौन–कौन सी है? उदाहरण दिजीए
55. मनुष्य से वनस्पति वगैरह में आत्म तत्व की सिद्धि बताइए ?
56. जीवन में उतारने योग्य जयणा की महत्वता बताईए ?
57. जयणा के स्थान कौन–कौन से है?
58. पानी छानने की विधि बताइए ?
59. बिजली के उपयोग में सवधानी कैसे रखनी चाहिए ?
60. सचित, अचित का अर्थ उदाहरण सहित समझाइए?
61. क्या पानी उबालने पर जीव मरते है? दोष लगता है?
62. एकेन्द्रिय के 22 भेद किस प्रकार से है?
63. बेईन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय के उदाहरण दिजीए?
64. मनुष्य के 14 अशुचि स्थान कौन–कौन से है?
65. जयणा के लिए क्या–क्या नियम लागू पडते है?
66. मनुष्य के तीन भेद, कौन–कौन से है?
67. मनुष्य के 303 भेद किस प्रकार से है ?

68. देवद्रव्य क्या है? उसमें कौन से द्रव्यों का समावेश होता है?
69. देवद्रव्य का आज्ञानुसार उपयोग से लाभ बताइए?
70. देवद्रव्य का अपनी मर्जी अनुसार वहीवट के नुकसान बताइए?
71. ज्ञानावरणीय कर्म का अर्थ विस्तृत रुप में लिखिए?
72. दर्शनावरणीय कर्म की व्याख्या विस्तृत रुप में लिखिए?
73. आठ कर्मों से जीव का शुद्ध-अशुद्ध स्वरुप को समझाने हेतु चित्रांकन किजीए?
74. मोहनीय कर्म की व्याख्या विस्तृत रुप में किजीए?
75. अंतराय एवं वेदनीय कर्म को समझाइए?
76. आयुष्य एवं गोत्र कर्म की व्याख्या किजीए?
77. नाम कर्म की व्याख्या किजीए एवं उसके भेद संक्षिप्त में लिखिए?
78. शरीर नाम कर्म की व्याख्या एवं उसके भेद लिखिए?
79. बंधन नाम कर्म की व्याख्या एवं उसके भेद लिखिए?
80. संघयण नाम कर्म की व्याख्या एवं उसके भेद लिखिए?
81. संस्थान नाम कर्म के भेद बताइए?
82. वर्ण नाम कर्म का अर्थ एवं उसके भेद बताइए?
83. आनुपूर्वी का अर्थ एवं उसके भेद बताइए?
84. प्रत्येक प्रकृति के आठ भेद कौन-कौन से है?
85. अजीव तत्व के भेदों को टेबल के रुप में लिखिए?
86. स्कंध, देश, प्रदेश, परमाणु को चित्र सहित व्याख्या किजीए?
87. पुद्गल के लक्षण कौन-कौन से है?
88. शब्द के तीन प्रकार समझाइए?
89. कालचक्र किसे कहते है? चित्र एवं टेबल सहित समझाइए?
90. छः द्रव्यों की 23 द्वारों से विचारणा किजीए?
91. जीवन के सृजन हेतु मुख्य पांच गुण बताइए ?
92. सदाचार के 18 प्रकार कौन-कौन से है?
93. क्या पृथ्वी घुमती है? टिप्पणी किजीए?
94. पृथ्वी यदि फिरती होती तो क्या होता?
95. पृथ्वी घूमती नहीं है? प्रमाण दिजीए?
96. रात दिन कैसे होते है? समझाइए?
97. श्री वज्रस्वामी की कथा संक्षिप्त में लिखिए?
98. श्री नागकेतु की कथा संक्षिप्त में लिखिए?
99. श्री संप्रति महाराजा की कथा संक्षिप्त में लिखिए?
100. रात्रिभोजन त्याग पर हंस और केशव की कथा संक्षिप्त में लिखिए?
101. निर्दोष सीताजी पर क्यो कलंक आया?

18. सामान्य ज्ञान

A. GAME - 24 तीर्थंकरों का परिचय

(बायें से दायें उत्तर दिजीए)

1. श्री ऋषभदेवजी का च्यवन स्थल
2. श्री संभवनाथजी का यक्ष
3. चौवीसवें तीर्थंकर का शरीर प्रमाण कितने हाथ का है
4. श्री पद्मप्रभस्वामीजी का प्रमुख गणधर
5. श्री मुनिसुव्रतस्वामीजी की यक्षिणी
6. श्री श्रेयांसनाथजी का जन्म नक्षत्र
7. श्री शांतिनाथजी का दीक्षा स्थल
8. श्री शीतलनाथजी का प्रथम गणधर
9. श्री वासुपूज्यजी को केवलज्ञान किस वृक्ष के नीचे हुआ
10. श्री अनंतनाथजी का शरीर प्रमाण
11. श्री अजितनाथजी का च्यवन मास
12. श्री महावीरस्वामीजी की मुख्य साध्वी:

(ऊपर से नीचे उत्तर लिखिए)

1. श्री चंद्रप्रभस्वामीजी का जन्म नक्षत्र:
2. श्री धर्मनाथजी का दीक्षा स्थल:
3. श्री अरनाथजी की यक्षिणी:
4. श्री कुंथुनाथजी एवं मुनिसुव्रतस्वामीजी का च्यवन मास:
5. श्री सुमतिनाथजी का प्रथम गणधर:
6. श्री नेमीनाथजी के प्रथम गणधर:
7. श्री मल्लिनाथजी की प्रथम साध्वी:
8. श्री शीतलनाथजी का च्यवन स्थल:
9. श्री विमलनाथजी का यक्ष:
10. श्री अनंतनाथजी का प्रमुख गणधर:
11. श्री शांतिनाथजी का जन्म नक्षत्र:
12. श्री पार्श्वनाथजी को किस वृक्ष के नीचे केवलज्ञान:

1→ ↓			▨	2 ↓	2→			3 ↓	▨
	▨	▨	▨		▨	▨	▨		▨
	▨	▨	▨		▨	3→			4 ↓
	5 ↓	▨	▨		4→			▨	
5→				▨	▨	▨	6→	6 ↓	
▨		▨	▨	7→					▨
▨	▨	7 ↓	▨	▨	8 ↓	8→			▨
▨	▨		▨	▨		▨	▨		9 ↓
10 ↓	▨		9→			11 ↓	▨	▨	
	▨		▨	▨			▨	▨	
10→			12 ↓	▨			11→		
	▨	▨		▨	12→				

B. चित्रावली

किसी भी एक तीर्थ का चित्रांकन करके रंग भरिये:-

मुँहपत्ति तथा शरीर की प्रतिलेखना के 50 बोल का सचित्र सरल ज्ञान

नोट: भिन्न भिन्न समुदायों में मुहपत्ति पडिलेहण की विधि मे थोडा सा फर्क भी हो सकता है, इसलिये उसे गलत विधि नहीं समझना।

नोटः दाएँ : राईट (Right), बाएँ : लेफ्ट (Left)

1

यथाजात मुद्रा में बैठकर दोनों हाथ दोनों पैरों के बीच रखकर मुँहपत्ति को बाएँ हाथ में स्थापित करें।

2

मुँहपत्ति के बंद किनारी वाला भाग दाहिने हाथ में पकड़कर मुँहपत्ति खोलनी चाहिए।

3

खुली हुई मुँहपत्ति को पकडकर दृष्टि प्रतिलेखना करें, उस समय 'सूत्र' शब्द मन में बोले। मुँहपत्ति को उलटकर 'अर्थ', फिर मुँहपत्ति को उलटकर 'तत्त्व करी सद्दहुं' बोले।

4

मुँहपत्ति को बाएँ हाथ से झाडते हुए सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्वमोहनीय परिहरुं बोलें तथा दाहिने हाथ से झाड़ते हुए काम-राग, स्नेह-राग, दृष्टि-राग परिहरुं बोलें

5

उसके बाद बाएँ हाथ में मुँहपत्ति की स्थापना कर मुँहपत्ति के बीच के भाग को पकड़कर मुँहपत्ति को मोड़ना चाहिए।

6

मुँहपत्ति के बन्द किनारे वाला भाग मोडकर अंदर से, उस तरह अन्त से मुँहपत्ति के दाहिने हाथ के अंगूठे तथा तर्जनी ऊँगली से पकड़ना चाहिए।

7

पकडी हुई उस मुँहपत्ति को अनामिका ऊँगली के सहारे पकड़कर थोड़ा सा बार निकालकर चित्र के अनुसर रचित-अनामिका बीच में रहनी चाहिए।

8

इसी तरह अनामिका-मध्यमा तथा मध्यमा तर्जनी से बीच में मोड़कर चित्र के अनुसार तीन विभाग करें।

9

बाएँ हाथ की अंगुलियों के छोर से स्पर्श किए बिना मुँहपत्ति को ऊपर रखकर मन में 'सुदेव' बोलें। और मुहपत्ति को उंगलीयों के मूल तक ले जाइए।

10

इस तरह उंगली के मूल से हथेली तक बीच में स्पर्श किए बिना मुँहपत्ति रखकर 'सुगुरू' बोलना चाहिए

11

इसी तरह हथेली के बीच से कोहनी तक स्पर्श किए बिना मुँहपत्ति रखकर 'सुधर्म आदरु' बोलना चाहिए।

12

हाथ के मध्यभाग से उँगली के छोर तक जैसे पखारते हों, इस प्रकार मुँहपत्ति को स्पर्श कर 'कुदेव, कुगुरु, कुधर्म परिहरुं' बोलना चाहिए। (चित्र 12 के अनुसार) 'ज्ञान विराधना, दर्शन विराधना, चारित्र विराधना परिहरुं', तथा 'मनदंड, वचनदंड, कायदंड परिहरुं' क्रमशः बोलें।

चित्र संख्या 9-10-11 के अनुसार, आगे क्रमानुसार 'ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदरुं' और 'मन-गुप्ति, वचन-गुप्ति, काय-गुप्ति आदरुं' बोलें।)

(प्रथम सुदेव (आदि)............ आदरूं बोलते हुए अन्दर लाना है
फिर कुदेव (आदि)............ परिहरुं बोलते हुए बाहर जाना है)

13

हाथ को उलटाकर उंगलियों के छोर से कोहनी तक स्पर्श करके ले जाते हुए 'हास्य, रति, अरति परिहरुं' कहना।

14

चित्र 13 के अनुसार मुँहपत्ति बाएँ हाथ में तैयार कर दाहिने हाथ के मध्यमभाग से उंगुलियों के छोर तक, फिर उलटा हाथ करके उंगली को कोहनी तक स्पर्श करके ले जाते हुए 'भय, शोक, दुगंछा परिहरुं' ऐसा बोलना चाहिए।

15

आखों आदि अंगों की प्रतिलेखना के लिए मुँहपत्ति के छोर खुले और कड़े रहें, इस प्रकार चित्र के अनुसार तैयार करें।

16

तैयार किये गये खुले तथा कड़े छोर को सीने की ओर फिराना चाहिए तथा उस समय दोनों हथेलियों को खोलकर सीने की तरफ करें।

17

वैसी मुँहपत्ति से दोनों आँखों के बीच के भाग की प्रतिलेखना करते हुए 'कृष्ण लेश्या' बोलें।

18

इसी तरह दाई आँखों की प्रतिलेखना करते हुए 'नील लेश्या' मन में बोलें।

19

इसी तरह बाई आँखों की प्रतिलेखना करते हुए 'कापोत लेश्या परिहरुं' मन में बोलें।

20

आँखों के समान मुँह के भी तीन विभागों में बीच में दाहिने बाए क्रमश: रस गारव, ऋद्धि गारव, साता गारव परिहरुं, बोलें।

21

मुँह के समान सीने के तीन विभागों में बीच में दाहिने बाएँ क्रमश: माया शल्य, नियाण शल्य मिथ्यात्व शल्य परिहरुं बोलें।

22

दाएँ कन्धे को ऊपर से नीचे प्रतिलेखन करते हुए 'क्रोध' तथा दाई कांख (बगल) का प्रतिलेखन करते हुए 'मान परिहरुं' मन में बोलें।

23

बाएँ कंधे के ऊपर से नीचे प्रतिलेखन करते हुए 'माया' तथा बाहिनी कांख (बगल) का प्रतिलेखन करते हुए 'लोभ परिहरुं' बोलें।

24

दाएँ पैर की बांई ओर, बीच में और दांई ओर चरवले की अंतिम दशी (कोर) घुटन से लेकर पैर के पंजे तक प्रतिलेखन करते हुए क्रमश: पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय की जयणा करुं बोलें

25

बाहिने पैर की बांई ओर, बीच में और दाई ओर चरवले की अंतिम दशी (कोर) से घुटन से लेकर पैर के पंजे तक प्रतिलेखन करते हुए क्रमश: वाउकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय की जयणा (रक्षा) करुं बोलें।

संस्कार वाटिकाओं को
हार्दिक शुभकामनाएँ

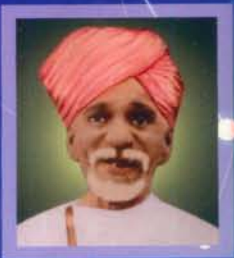
स्व. मुथा सूरजमलजी
किसनाजी नागौत्रा सोलंकी

स्व. श्रीमती मथुरादेवी
सूरजमलजी

स्व. श्रीमती संतोषदेवी
कांतिलालजी छाजेड़

स्व. हर्षिताकुमारी
एम. जैन

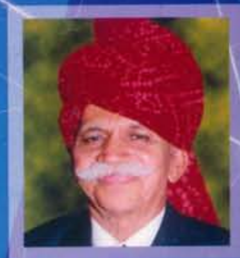
स्व. एस. मूलचन्दजी
नागौत्रा सोलंकी

श्रीमती शान्तिबाई एम. नागौत्रा सोलंकी

एम. महावीरचन्द जैन
(एल.आई.सी. एजेन्ट)

श्रीमती चन्द्रकांतादेवी महावीरचन्द

रजनीश एम. जैन

प्रेक्षा एम. जैन

प्रेरणा एम. जैन

रिषभ एम. जैन

M.M. CORPORATION

70/56, Perumal Mudali Street, Sowcarpet, Chennai - 600 079.

Mob. : 98843 34692, 93800 02203, 96772 32696 Ph. : 044-2538 4057, 2346 5117

M. MAHAVEERCHAND JAIN (LIC Agent, D.M. Club & Mediclaim & General Insurance Agent)

SHA MAHAVEER CHAND MOOLCHANDJI NAGOTRA SOLANKI, BALWARA

Ph. : 098843 34692, 02973-245 735

धार्मिक पाठशाला में आने से.....

1) सुदेव, सुगुरु, सुधर्म की पहचान होती है।

2) भावगर्भित पवित्र सूत्रों के अध्ययन व मनन से मन निर्मल व जीवन पवित्र बनता है और जिनाज्ञा की उपासना होती है।

3) कम से कम, पढाई करने के समय पर्यंत मन, वचन व काया सद्विचार, सद्वाणी तथा सद्वर्तन में प्रवृत्त बनते हैं।

4) पाठशाला में संस्कारी जनों का संसर्ग मिलने से सद्गुणों की प्राप्ति होती है "जैसा संग वैसा रंग"।

5) सविधि व शुद्ध अनुष्ठान करने की तालीम मिलती है।

6) भक्ष्याभक्ष्य आदि का ज्ञान मिलने से अनेक पापों से बचाव होता है।

7) कर्म सिद्धान्त की जानकारी मिलने से जीवन में प्रत्येक परिस्थिति में समभाव टिका रहता है और दोषारोपण करने की आदत मिट जाती है।

8) महापुरुषों की आदर्श जीवनियों का परिचय पाने से सत्त्वगुण की प्राप्ति तथा प्रतिकुल परिस्थितिओं में दुर्ध्यान का अभाव रह सकता है।

9) विनय, विवेक, अनुशासन, नियमितता, सहनशीलता, गंभीरता आदि गुणों से जीवन खिल उठता है।

बच्चा आपका, हमारा एवं
संघ का अमूल्य धन है।
उसे सुसंस्कारी बनाने हेतु
धार्मिक पाठशाला अवश्य भेंजे।